वेद-दिग्दर्शिका

ॠग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

ब्रह्मप्रकाश लाहोटी

वेद-दिग्दर्शिका

ब्रह्मप्रकाश लाहोटी

प्रकाशक :-
जयनारायण गंगाबिसन
सुजानगढ़ (राजस्थान)
दूरभाष 01568-220051

संस्करण :
प्रथम - अप्रेल 2007
द्वितीय - अगस्त 2007

प्राप्ति स्थान :-
ओमप्रकाश लाहोटी
''लाहोटी निवास''
सुजानगढ़ (राजस्थान)
दूरभाष 01568-220165

मूल्य :- 15/-

मुद्रक :-
अम्बिका ऑफसेट
सीकर (राज.)

ओ३म्

निवेदन

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान जगत् का अधिष्ठाता स्वामी है, जिसका स्वरूप आनन्दमय और अन्यों से भिन्न है, मैं उस महान् ब्रह्म को नमन करता हूँ।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ अथर्व 19-7-1

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु, कीर्ति,
धन मेधा विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

वेद का पावन प्रकाश पहुँचाने और शिक्षा के क्षेत्र में सब विद्या-मंदिरों में वेद, वेदांगादि का पाठ्यक्रम में पठन-पाठन व अनुसंधान शुरु हो और खोई मानवता को प्राप्त करके मनुष्य सुखी और आनन्दित हो सके, इस शुभ संकल्प के साथ प्रस्तुत है प्रभु की अमर वाणी की रूप-रेखा।

इस पुस्तक को लिखने में जिन-जिन लेखकों की पुस्तकों से सहायता ली गई है, मैं उन सबका आभार प्रकट करता हूँ। विद्वान् डॉ. सत्यव्रतजी राजेश (गुरूकुल कांगड़ी, हरिद्वार) एवं आचार्य सत्यानंदजी वेदवागीश प्रमुख हैं जिन्होंने परामर्श देकर इस कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता की है, मैं उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। उनमें श्री रामगोपालजी गाड़ोदिया, मेरे ज्येष्ठ भ्राता वानप्रस्थ सत्यनारायणजी आर्य, कनिष्ठ भ्राता रामेश्वरलाल लाहोटी और श्री बालकृष्णजी शास्त्री आदि प्रमुख हैं, उनके प्रोत्साहन के लिये उनका धन्यवाद करता हूँ।

श्रीमान् शिवप्रसादजी संगठन मंत्री, विद्याभारती राजस्थान क्षेत्र
श्रीमान् बाबूलालजी मंत्री, विद्याभारती राजस्थान क्षेत्र
श्रीमान् योगेन्द्रसिंहजी मंत्री, भारतीय शिक्षा समिति, जयपुर प्रान्त
श्री बंशीधर यादव प्राचार्य, श्री रा.गा.उ.मा.आदर्श विद्या मन्दिर, सुजानगढ़
श्री राममनोहर शर्मा, प्राचार्य, उ. मा. आदर्श विद्या मन्दिर, सीकर

इन पाँचों महानुभावों से वेद पठन-पाठन, अनुसंधान की चर्चा मे इस आश्वासन से कि वेद-परिचय की छोटी पुस्तक तैयार कर दीजिये जिसको हम विद्यालयों में लागू करेंगे, जिससे वेदों की पढ़ाई की रूपरेखा तैयार हो सकेगी। इनके प्रोत्साहन का परिणाम ही इस पुस्तक के रूप में आप सबके सामने है। विद्यालयों में अपनी संस्कृति और सभ्यता विकसित हो और पाश्चात्त्य बयार रुके उसी के लिये मेरा यह प्रयास है।

इस पुस्तिका का विमोचन माननीय सह सरकार्यवाह मदनदासजी देवी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, माननीय राष्ट्रीय अध्यक्ष विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान डॉ. पी. के. माधवन एवं माननीय संगठन मंत्री श्री ब्रह्मदेवजी शर्मा ''भाईजी'' के कर कमलों द्वारा दिनांक 9 अप्रेल, 2007 को उच्च माध्यमिक आदर्श विद्या मन्दिर, सीकर में सम्पन्न हुआ।

माननीय दीनानाथ बत्रा, संयोजक, शिक्षा बचाओं आन्दोलन समिति, माननीय शंतनु रघुनाथ शेण्डे, पूर्व राष्ट्रीय मंत्री, विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान का भी अपूर्व सहयोग एवं मार्गदर्शन मिला। लेखक सदैव आपका आभारी रहेगा।

माननीय नरेन्द्रजीतसिंह रावल, राष्ट्रीय मंत्री, विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान ने आश्वासन दिया है कि आगामी सत्र में वेद-दिग्दर्शिका को विद्या भारती के विद्यालयों में नैतिक शिक्षा विषय के साथ पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जायेगा।

श्रीमान महेश होलानी, अध्यक्ष, भारतीय शिक्षा प्रसार समिति, सीकर एवं श्रीमान् शैलेन्द्र शर्मा, व्यवस्थापक, आदर्श शिक्षण संस्थान, चूरू ने भी इस पुस्तक के प्रकाशन, विमोचन व विद्यालयों में लागू करवाने में पूर्ण सहयोग किया है। मैं इनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वेद की पावन शिक्षा से मानवता का विकास हो व भारत पुनः जगत्-गुरु बने।

पाठक-गणों के सुझाव आमंत्रित हैं, जिससे आगे के संस्करण में ध्यान रखा जा सके।

निवेदक -

ब्रह्मप्रकाश लाहोटी
लाहोटी निवास
सुजानगढ़ (चूरू) 331507
फोन - 01568-220165

सम्मतियाँ

॥ ॐ ॥ — (1) नागपुर 24/5/2006

श्रीमान शर्माशास्त्री

सादर प्रणाम।

आशा है आप सब स्वस्थ होंगे। आपके द्वारा प्रेषित वेद-दिग्दर्शिका पुस्तिका मा. सुदर्शन जी को प्राप्त हुई। अतीव आनंद हुआ। इतने संक्षेप में - वेदों की पहचान - हम सबको प्रेरणा देगी ही। यह विश्वास है।

शेष शुभ,

प्रदीप
(स्वीय सहायक)

माननीय के. सी. सुदर्शन
सर संघचालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

इतने संक्षेप में वेदों का परिचय
नई पीढ़ी को वेदज्ञान की जिज्ञासा निर्माण करेगी।
इस प्रयास के हेतु, आपका अभिनंदन करते प्रणाम/
मदनदास

मदनदास देवी
सह सरकार्यवाह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

वेदः सर्वस्य मूलम्,
धर्मो रक्षति रक्षितः ।

03.08.06

डॉ. पी. के. माधवन
राष्ट्रीय अध्यक्ष, विद्याभारती ।

डॉ. पी. के. माधवन

राष्ट्रीय अध्यक्ष

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान

वेद के तत्व ज्ञान को सरल
भाषा के माध्यम से किया
प्रयास सराहनीय है। ऐसे
प्रयास ही हिन्दू जीवन मूल्यों
के प्रति आस्था जगा सकेंगे।
ब्रह्मदेव शर्मा

ब्रह्मदेव शर्मा

संगठन मंत्री

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान

वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्
सम्भावयमाने पाश्चात्य प्रभावे
खलु चिन्तनीयमस्ति यत् अधुना
वेद प्रचारेणैव सर्वं निराकरणं
भविष्यति। यतो हि इयं
भगवद्वाणी तस्याः
ज्ञानं भारतीयानां कृते
आवश्यकमस्ति

अग्रपीठाधीश्वर वेदान्ती डॉ. राघवाचार्य महाराज
अग्रपीठ रैवासा, सीकर
एवं
अध्यक्ष, राजस्थान संस्कृत अकादमी
राजस्थान सरकार

वेद विद्या के प्रचार हेतु आपका यह कार्य स्तुत्य एवं प्रशंसनीय है। इस ग्रंथ के प्रकाशन से युवा पीढ़ी को वेद मंत्रों के वैज्ञानिक रहस्यों एवं वास्तविक अर्थ का ज्ञान होगा।

भवदीय
डॉ. प्रशान्तार्यः
कृते- आचार्य ज्ञानेश्वरार्यः

दर्शन योग महाविद्यालय

आर्यवन, रोजड़, पत्रालय सागपुर, जि. साबरकांठा (गुजरात)

भावी पीढ़ी को वेद एवं वैदिक संस्कृति से अवगत कराने के लिए माननीय श्री ब्रह्मप्रकाश जी लाहोटी का यह प्रयास स्तुत्य है। श्री लाहोटी जी ने वेद दिग्दर्शिका पुस्तक लिखकर गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। आशा करता हूँ संस्कृति से प्रेम रखने वाली संस्थाये अपने विद्यालयों में इस पुस्तिका को पढ़ाने की व्यवस्था कर लेखक के प्रयास का सम्मान करेगी तथा अपने छात्रों को सुसंस्कारिक कर राष्ट्र की सच्ची सेवा करेगी। लेखक के इस सद प्रयास हेतु मेरी मंगल कामनायें।

अध्यक्ष, वैदिक आश्रम, पिपराली
जिला सीकर (राजस्थान) भारत - 332027
फोन : 01572-226374, मो. 312559, Fax 226477

ग्रन्थ आर्यसंस्कृति तथा वैदिक सिद्धान्तों के लिये बहुत उपयोगी है। इसके लिये लेखक को मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनायें।

भवदीय

संचालक
गुरुकुल आश्रम, आमसेना नवापारा, उड़ीसा
आर्यवन, रोजड़, पत्रालय सागपुर, जि. साबरकांठा (गुजरात)

अनुक्रमणिका

1. वेद-प्रवेश

आज समस्त संसार दुःखों से त्रस्त है। धनी हो या निर्धन, पठित हो या अपठित सब शान्ति को खोज रहे हैं। विज्ञान ने आशातीत उन्नति की है, किन्तु वह भी त्रस्त मानव को त्राण नहीं दे सका। सब चिन्तित हैं, कि भविष्य का क्या होगा? इसका कारण है मनुष्य का मूल से पृथक् हो जाना। जैसे जड़ से कट कर वृक्ष सूख जाता है, वैसे ही सुख के मूल से कट कर सुख का वृक्ष भी सूख गया है। व्यक्ति धन में सुख ढूंढ रहा है। किन्तु जितना संसार में धन बढ़ रहा है, उतनी ही अशान्ति भी बढ़ रही है। विश्व के सबसे अधिक धनी देश अमरीका में सबसे अधिक आत्महत्या करने वाले हैं। क्या कारण है कि सुख शान्ति छाया बनकर रह गई है। जैसे छाया को पकड़ने वाला जितना छाया के पीछे भागता है उतनी ही वह आगे भागती है। मानव बढ़ रहे हैं तथा मानवता घट रही है।

दया, क्षमा, सहनशीलता, अहिंसा, सत्य, मैत्रीभाव, पवित्रता, सन्तोष, सात्त्विकता, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-समर्पण आदि खोजने पर भी कठिनाई से मिलते हैं और इनके अभाव में मानव संसार को नरक बना रहा है। चोरी, ठगी, ढोंग, पाखंड, अपहरण, अत्याचार और आतंकवाद के सांप फन फैलाए फुंकार रहे हैं। कौन देगा मानव को इनसे त्राण?

इसका उत्तर है कि जिस पावन शिक्षा से मानव करोड़ों वर्षों तक शान्ति से रहा और जिसने धरा को स्वर्गधाम बनाया, वही वैदिक शिक्षा इसका एक मात्र समाधान है। उसकी शिक्षा से पूर्व हम वेद के विषय में संक्षिप्त सा विचार कर लेते हैं।

वेदों की आवश्यकता

संसार में मानेवतर प्राणियों के लिए धर्म, अधर्म का प्रश्न नहीं है। वे केवल स्वाभाविक ज्ञान के सहारे जीवन चला लेते हैं। गाय के बच्चे को उठने, चलने, बोलने, खाने या तैरने आदि को सिखाने के लिए किसी शिक्षक की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मानव-शिशु को सब कुछ सिखाना पड़ता है। मानव को नैमित्तिक ज्ञान की आवश्यकता है। उसके बिना वह कुछ भी नहीं सीख सकता है। इसलिए परमात्मा ने उसे कर्तव्य कर्मों का ज्ञान कराने के लिए वेद का ज्ञान दिया है।

दूसरी बात है कि मानव के साथ धर्माधर्म, पाप-पुण्य जुड़ा हुआ है। उसे शुभाशुभ, पाप-पुण्य, करणीय अकरणीय कर्मों का फल मिलता है। जैसे राजा को करणीय और अकरणीय कर्मों का ज्ञान कराने के लिए संविधान बनाने की आवश्यकता है। यदि वह बिना संविधान में बतलाए कार्यों को करने पर किसी को दण्ड या पुरस्कार दे, तो वह न्यायकारी नहीं माना जा सकता, इसी प्रकार यदि अपना संविधान बिना बनाए ईश्वर किसी को सुख और किसी को दुःख देवे, तो उन्हें न्यायकारी नहीं माना जा सकता, जीव को ठीक या गलत कर्मों के करने का ज्ञान कराने वाला उसका संविधान ही वेद है।

इसलिए मानव को नैमित्तिक ज्ञान देने तथा अपना संविधान देने के लिए वेद-ज्ञान अत्यावश्यक था।

वेद चार हैं :- **ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद**

परमात्मा ने चार ही वेद क्यों दिए? क्या एक ही वेद से काम नहीं चल सकता था?

यह प्रश्न भी मानव-मस्तिष्क में आता है। इसका उत्तर यह है कि मानव-जीवन की पूर्णता के लिए ज्ञान, कर्म, उपासना तथा विज्ञान की आवश्यकता है। इनमें से एक के भी अभाव में मानव की प्रगति रुक जाती है। वह यथार्थ ज्ञान के बिना वस्तु से यथार्थ सुख नहीं प्राप्त कर सकता तथा ठगा और बहकाया जा सकता है। कर्म के बिना ज्ञान की सार्थकता नहीं हो सकती। मानव के सामने भोजन रखा हो तथा उसे यह भी ज्ञान हो, कि भोजन उठाकर खाने का कर्म न करे, तो उसकी भूख नहीं मिट सकती। अतः ज्ञान के अतिरिक्त कर्म भी आवश्यक है।

ज्ञान तथा कर्म के साथ उपासना भी आवश्यक है। बिना उपासना के मानव हृदय में तरलता नहीं आती। उसे न स्वयं जीवन में रस आता है और न अन्यों को प्रेम, सहानुभूति तथा अपनत्व दिखा पाता है। उसका हृदय बंजर बन जाता है; जहाँ सद्भाव के पौधे नहीं पनपते अपितु दाहक रेह उपजती है।

विज्ञान भी मानव-जीवन की उन्नति के लिए अनिवार्य है। कला संस्कृति का विकास विज्ञान ही करता है। एक रुपये से भी कम मूल्य के लोहे को घड़ी का रूप देकर कई हजार रुपये का मूल्य विज्ञान ही देता है। विज्ञान जगत् के ढके रहस्यों को खोलता है तथा मानव-जीवन को सुखद बनाने में सहायक है। आज विज्ञान ने संसार की दूरी को कम कर दिया है तथा हजारों मील के सन्देश को क्षणग्राही बना दिया है।

इन चारों ज्ञान, कर्म, उपासना तथा विज्ञान को प्राप्त कर मानव-जीवन में पूर्णता प्राप्त करे, इसलिए परमात्मा ने एक वेद न बनाकर चार वेद बनाए हैं।

भारत में राम-राज्य का स्वप्न संजोने वालों को वेद की ओर चलना ही होगा। महर्षि वाल्मीकि, मर्यादा पुरुषोत्तम राम को वेद-वेदांग-तत्त्वज्ञ :- वेद-वेदांगों के तत्त्व को जानने वाले तथा शूरवीर थे, लिखते हैं। वे 'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा' भाई भाई से द्वेष न करे, वेद में पढ़ते थे, तभी तो चारों भाईयों के प्रेम की पराकाष्ठा संसार के सामने प्रस्तुत की थी। आज पुनः युग, मनुर्भव मनुष्य बनो, की गुहार लगा रहा है। उसका सपना वेद की शिक्षा ही पूरी करेगी।

उसी ओर मानवों को प्रवृत्त कराने का यह लघु प्रयास है। हमारी संस्कृति और सभ्यता पुनः जागृत हो, यही इच्छा है। आगे इसी को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

2. वेदोत्पत्ति व नित्यत्व

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥
(यजु अ. 31 मं.7)

प्रथम ईश्वर को नमस्कार और प्रार्थना करके वेदों की उत्पत्ति का विषय लिखा जाता है, कि वेद किसने उत्पन्न किये हैं?

(तस्माद् यज्ञात् स.) सत् जिसका कभी नाश नहीं होता, चित् जो सदा ज्ञान-स्वरूप है, जिसको अज्ञान का लेश भी कभी नहीं होता, आनन्द जो सदा सुखस्वरूप और सबको सुख देने वाला है, इत्यादि लक्षणों से युक्त पुरुष (परमेश्वर) जो सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, जो सब मनुष्यों को उपासना के योग्य इष्टदेव और सब सामर्थ्य से युक्त है, उसी परब्रह्म से (ऋचः) ऋग्वेद, (यजुः) यजुर्वेद, (सामानि) सामवेद और (छंदांसि) इस शब्द से अथर्व भी ये चारों वेद उत्पन्न हुये हैं। इसलिये सब मनुष्यों को उचित है, कि वेदों को ग्रहण करें और वेदोक्त रीति से चलें। जज्ञिरे और अजायत इन दोनों क्रियाओं के अधिक होने से वेद अनेक विद्याओं से युक्त हैं, ऐसा जाना जाता है। वैसे ही तस्मात् इस पद के अधिक बार आने से यह निश्चय जानना चाहिये, कि वेद ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं, किसी मनुष्य से नहीं।

शतपथ आदि ब्राह्मण और वेद-मंत्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है, कि 'यज्ञ' शब्द से विष्णु का और विष्णु शब्द से सर्वव्यापक जो परमेश्वर है उसी का ग्रहण होता है, क्योंकि सब जगत् की उत्पत्ति करनी परमेश्वर में ही घटती है, अन्यत्र नहीं।

ईश्वर ने सृष्टि के आदि में वेदों का ज्ञान चार ऋषियों को दिया व उच्चारित करवाये और इस तरह मानव-बुद्धि को ज्ञान मिला :-

1. ऋग्वेद अग्नि ऋषि 2. यजुर्वेद वायु ऋषि
3. सामवेद आदित्य ऋषि 4. अथर्ववेद अंगिरा ऋषि

परमात्मा ने असीम कृपा कर मनुष्यों को दो आंखे दी हैं, परन्तु यदि प्रकाश का स्रोत अग्नितत्त्व न उत्पन्न किया होता, तो आंखों का विषय रूप नाकाम हो जाता। इसी तरह दयालु और कृपालु ईश्वर ने मनुष्य की बुद्धि के लिये ज्ञान के अथाह महासागर वेद भी दिये हैं। यही वेद ईश्वर की वाणी कहाता है। वेद अपौरुषेय इस कारण ही हैं।

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसाः॥
(311) शत. का. 14 अ.5। ब्रा. 4 कं. 10

याज्ञवल्क्य महाविद्वान् जो महर्षि हुए हैं, वह अपनी पण्डिता पत्नी मैत्रेयी को उपदेश करते हैं, कि हे मैत्रेयी! जो आकाशादि से भी बड़ा सर्वव्यापक परमेश्वर है, उससे ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं, जैसे मनुष्य के शरीर से श्वास बाहर आकर फिर भीतर को जाता है, इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकट करता है, और वे बीजांकुरवत् बने रहते हैं। जैसे बीज में अंकुर प्रथम रहता है, वही वृक्ष रूप होकर फिर बीज के भीतर रहता है। इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सब दिन बने रहते हैं, उनका नाश कभी नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वर की नित्य विद्या है।

शंकराचार्य ने वेदों को नित्य मानकर व्याख्यान किया है, कि ऋग्वेदादि जो चारों वेद हैं, वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं, सूर्य के समान सब सत्य अर्थों के प्रकाश करने वाले हैं, उनका बनाने वाला सर्वज्ञादि गुणों से युक्त पर ब्रह्म है, क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव सर्वज्ञान-गुणयक्त इन वेदों को बना सके, ऐसा संभव कभी नहीं हो सकता। किन्तु वेदार्थ के विस्तार के लिये किसी जीव विशेष पुरुष से अन्य शास्त्र का बनाना संभव होता है। परमेश्वर-कृपा से ही उनके बनाये वेदों के पढ़ने, विचारने का सामर्थ्य प्राप्त होता है और उसी के अनुग्रह से मनुष्यों को यथाशक्ति विद्या का बोध होता है। अन्यथा नहीं। ऐसा शंकराचार्य ने कहा है।

3. वेद क्या है?

ज्ञान वह प्रकाश है, जो मनुष्य के मन और मस्तिष्क का अज्ञान रूपी अन्धकार समाप्त कर देता है। सृष्टि के आदि में मानव के मार्ग-दर्शन और कल्याण के लिए प्रभु ने जो ज्ञान-प्रकाश दिया उसका नाम है ''वेद''। वेद परम कारुणिक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान् की वाणी है। यह ज्ञान और भाषा से संयुक्त है। यह अनन्त और नित्य है। जैसा भगवान् स्वयं व्यापक और आकाशवत् विस्तार वाला है; उसी प्रकार यह वेदवाणी भी विस्तृत है। जिस प्रकार माप की पराकाष्ठा आकाश में परिसमाप्त है, उसी प्रकार ज्ञान की पराकाष्ठा उसके एक मात्र आश्रय भगवान् के रचे वेद में परिसमाप्त है।

वेद सब सत्य विद्याओं का स्रोत और अखंड भंडार है। वेदों में समस्त सत्य विद्याओं का बीज पाया जाता है। अतः वेद-ज्ञान सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। वेदों में लौकिक और पारलौकिक ज्ञान का भंडार निहित है। संसार के विज्ञान-विषयों का ज्ञान इनसे हमें प्राप्त होता है। पृथ्वी गतिशील है, संपूर्ण ग्रह एवं नक्षत्र-माला अपने अपने अक्ष (धुरी) पर घूमती हुई अपनी अपनी परिधि में चलायमान है। सूर्य के आकर्षण से सभी ग्रह नक्षत्र आदि अपना अपना स्थान जमाये हुए हैं। वेदों में गणित, ज्योतिष, नौका, विमानादि विद्या, तार बेतार विद्या, चुंबकीय विद्या, वैद्यक-शास्त्र, संगीत व अन्य सब विद्यायें बीज रूप में हैं। संपूर्ण योग-विद्या, अध्यात्म वेदों से मिलता है। ईश्वर की व्यवस्था और नियंत्रण से ही सूर्य, पृथ्वी, नक्षत्र आदि आकाश में बिना आश्रय के वर्तमान हैं और सूर्य के आकर्षण से ही स्थित हैं।

वेद ईश्वरीय ज्ञान होने से तर्क-संगत और स्वयं सिद्ध सत्य है। वेद के सभी शब्द यौगिक हैं। वेद से व्याकरण का प्रादुर्भाव हुआ है, न कि व्याकरण से वेद का। ऋषि मंत्रों के कर्त्ता नहीं, अपितु द्रष्टा हैं। ऋषयो मंत्रद्रष्टारः।

परमात्मा का उपदेश है, कि तर्क-वितर्क, उपदेश्य-उपदेशक वा शिष्य-अध्यापक होकर वेद-विद्या से नया नया आविष्कार करें।

मैं क्या हूँ? क्या मैं यह शरीर हूँ? इसमें चेतना कहाँ से आई है? मैं क्या वास्तव में अमर हूँ। परिमितता के इन बन्धनों से क्या मैं कभी छूट सकता हूँ? यह संसार किसलिए है? किधर जा रहा है? मेरा इससे क्या संबन्ध है? इन सब मार्मिक प्रश्नों के (कांच में मुंह देखने की तरह) वेदों के अध्ययन से पूरे हल निकल जाते हैं।

वेदों में क्या है? ऋषि कहता है, कि वेदों में क्या नहीं है? वेद में मूल रूप से वर्णित कुछ विद्याएँ इस प्रकार है - योग विद्या, ब्रह्म विद्या, सृष्टि विद्या, तार विद्या, विमान विद्या, भूगोल विद्या, भूगर्भ विद्या, खगोल विद्या, गणित विद्या, व्यवहार विद्या, वैद्यक विद्या, गान विद्या, व्याकरण विद्या, शिल्प विद्या, युद्ध विद्या, राज विद्या, धर्म विद्या इत्यादि

धर्म क्या अधर्म क्या? ईश्वर का सच्चा स्वरूप क्या?
ज्ञान क्या अज्ञान क्या? विद्या क्या अविद्या क्या?
श्रेयः क्या प्रेयः क्या? परा क्या अपरा क्या?
सत्य क्या असत्य क्या? प्रवृत्ति क्या निवृत्ति क्या?
कर्म क्या विकर्म क्या? कर्त्तव्य क्या अकर्त्तव्य क्या?
हित क्या अहित क्या? पाप क्या पुण्य क्या?
जीवन क्या मृत्यु क्या? शुद्ध क्या अशुद्ध क्या?
मित्र क्या अमित्र क्या? प्रेम क्या द्वेष क्या?
श्रद्धा क्या अश्रद्धा क्या? सगुण क्या निर्गुण क्या?
साकार क्या निराकार क्या? एकदेशीय क्या सर्वदेशिक क्या?
आत्मा क्या परमात्मा क्या? नीति क्या अनीति क्या?

इत्यादि

'यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्'।

(ऋग्वेद 10/114/8)

अर्थात् जितना बड़ा व्यापक ब्रह्म अथवा आकाश है, उतनी ही यह वेद-वाणी है।

'अपक्रामन् पौरुषेयाद्, वृणानो दैव्यं वचः।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभि : सह'॥

(ऋग्वेद 7/105/1)

अर्थात् हे मनुष्य! मनुष्य द्वारा उत्पादित ज्ञान और वाणी से हटकर देवी वेदवाणी को चुनकर ग्रहण करते हुए समस्त मानवों के साथ अपनी नीति का निर्धारण कर।

'तान्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्'।

(ऋग्वेद 10/71/3)

अर्थात् मनुष्य लोग ऋषियों में प्रविष्ट वेदवाणी को प्राप्त करते हैं।

वेद वह ज्ञान है जिससे महान् लाभ होता है। ज्ञान के अन्दर विविध विद्यायें आती हैं। लाभ में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ आते हैं। इससे जीवन में महती प्राप्ति होती है यानी सब कुछ मिल जाता है।

वेद की स्थिति विश्वकोष के समान है, जिसमें विविध विषय एक साथ ही वर्णित हैं। वेद के ज्ञान के बिना मानवता सुख की नींद नहीं सो सकेगी। अतः सब आपत्तियों का निवारक वेद-ज्ञान है। इस ज्ञान का अधिकाधिक विस्तार होना चाहिए।

यह निश्चित विश्वास है, कि प्रभु-कृपा से वह दिन शीघ्र आयेगा जब धरती के सारे मनुष्य अपने सारे मत-भेद मिटा, सच्चे प्रभु पुत्र बन उसी के बताये 'वेद-मार्ग' पर चल कर अशान्ति, दुःख और समस्त उलझनों से छुटकारा पाकर धरती को स्वर्ग बना जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्' (ऋग्वेद 10/53/6)

तू मानव बन। दिव्य गुणों से ओतप्रोत मानव का निर्माण कर।

'ओ३म् क्रतो स्मर'। (यजु. 40/15)

हे कर्मशील जीव! तू ओ३म् का सदा स्मरण कर।

'ओ३म् प्रतिष्ठ'। (यजु. 2/13)

तू ओ३म् में प्रतिष्ठित हो जा यानि परमात्मा को अपने हृदय मंदिर में बिठा ले।

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' (गीता 8/12-13)

ओ३म् यह एकमात्र अविनाशी ब्रह्म का ही नाम है।

'असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योमा अमृतं गमय'

हे परमेश्वर! हमें अज्ञान से ज्ञान (वेद) की ओर ले चलो। हे परमेश्वर! हमें असत्य से सत्य (वेद) की ओर ले चलो। मरणचक्र से मोक्ष की ओर ले चलो। ऐसा करना चाहते हो ? तो वेद का पठन-पाठन चालू करो।

'कालो अश्वो वहति' (ऋग्)

समय का घोड़ा तेज दौड़ता है।

अतः सब विद्या-मंदिरों में वेद का पठन-पाठन-अनुसंधान तुरन्त चालू होवे।

खबर नहीं घड़ी एक की, नहीं इक पल की आस।
न जाने इस जीव का, भोर कहाँ हो वास॥

प्रभो वेद विद्या का विस्तार कर दो।

इस भारत देश का उद्धार कर दो॥

4. वेद-वाङ्मय

वेद विश्वनिधि है

वेद सब सत्य विद्याओं, ज्ञान-विज्ञान का आदि स्रोत और भंडार है। वेद-ज्ञान सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक है।

वेदांग

1. शिक्षा वेद-मंत्रों का उच्चारण करना सिखाती है।

2. कल्प श्रौत-सूत्र, गृह्य-सूत्र, धर्म-सूत्र और शुल्व-सूत्र इन चारों का समावेश कल्प वेदांग में होता है। सोलह संस्कारों का विधान गृह्य सूत्रों में है। मनुष्य के करने के योग्य कार्यों का विधान धर्म-सूत्रों में है।

3. व्याकरण वेद-शब्दों के विश्लेषण-पूर्वक अर्थ को सिखाती है।

4. निरुक्त वेद-मंत्रों के शब्दों के अर्थ का तथा देवता-ज्ञान का बोध कराता है।

5. छन्द वेद-मंत्रों के अक्षर, मात्रा, गद्य, पद्य आदि का ज्ञान कराता है।

6. ज्योतिष पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा आदि नक्षत्रों, ग्रह, उपग्रह का ज्ञान व खगोल भूगोलादि की विस्तृत जानकारी कराता है। वैदिक ज्योतिष में फलित ज्योतिष का निर्देश नहीं है।

उपवेद

1. **आयुर्वेद** यह शरीर की रक्षा, आरोग्य, दवाईयों के गुण, बिमारियों के इलाज का ज्ञान कराता है। ऋग्वेद से शल्य क्रिया का और अथर्ववेद से ओषधि-विज्ञान को ग्रहण किया गया है जो कि आयुर्वेद की सुश्रुता-संहिता और चरक-संहिता में है।
2. **धनुर्वेद** धनुष आदि अस्त्र शस्त्रों तथा प्रेक्षपास्त्र आदि का ज्ञान कराता है।
3. **गांधर्ववेद** संगीत का पूरा ज्ञान कराता है।
4. **अर्थवेद** शिल्प-शास्त्र व ओषधि-विषयक ज्ञान का भंडार है।

उपांग या दर्शन-शास्त्र

वेद के प्रमाणों से प्रमाणित व्याख्याकर्ता

1. न्याय दर्शन	गौतम मुनि	भौतिक व अभौतिक तत्त्वों की यथार्थता का प्रमाण कराता है।
2. वैशेषिक दर्शन	कणाद मुनि	पदार्थ, द्रव्य, परमाणु का वर्णन
3. सांख्य दर्शन	कपिल मुनि	प्रकृति, जीवात्मा, परमात्मा का विवेचन
4. योग दर्शन	पंतजलि मुनि	जीवात्मा द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने के साधन व आनन्द-प्राप्ति के उपाय।
5. वेदांत दर्शन	वेदव्यास मुनि	ब्रह्म के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या
6. मीमांसा दर्शन	जैमिनि मुनि	यज्ञादि कर्मों का विवेचन

उपनिषद्

प्रमाणिक ऋषिकृत उपनिषद् ग्यारह हैं। इनमें ब्रह्म-विद्या का उपदेश है जो बड़ा शांति देने वाला है। ये हैं ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर।

स्मृतियां

इनमें चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों के कर्त्तव्य; राजा, प्रजा, कर्मचारी के आपस के संबंध, व्यवहार, आचार, विचार, आदि का वर्णन है। अठाईस स्मृतियां उपलब्ध हैं, इनमें मनुस्मृति ही सर्वाधिक प्रामाणिक और प्रसिद्ध है। मनु महाराज संविधान के प्रथम निर्माता जाने जाते हैं।

ब्राह्मण-ग्रंथ

इनमें वेदों के विषयों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है

1. ऐतरेय ब्राह्मण	यह ऋग्वेद के विषयों को कर्मकाण्ड के रूप में प्रस्तुत करता हैं।
2. शतपथ ब्राह्मण	यह यजुर्वेद के विषयों को यज्ञ के रूप में प्रकट करता है।
3. साम (=ताण्डय) ब्राह्मण	यह सामवेद में वर्णित उपासना का उल्लेख करता है।
4. गोपथ ब्राह्मण	यह अथर्ववेद के विषयों को प्रकट करता है।

चारों वेदों की 1131 शाखायें हैं। इन सब शाखाओं व विद्याओं को वैदिक वाङ्मय कहा जाता है। वेदों के मूल बीजरूप का इन वाङ्मय में विस्तृत वर्णन है।

स्वार्थी तत्त्वों ने इन वेदांग आदि में कई प्रकार की मिलावट कर डाली है, कहीं जोड़ा गया है, कहीं घटाया गया है। इनमें जो वेदानुकूल हों उनको ही मान्य समझें।

विशेष :- भूत, वर्तमान, भविष्यत् की जो भी ज्ञान विज्ञान शिक्षा, विस्तृत थी, है और होगी उनमें जो वेदानुकूल सत्य होवे, उसी को मान्य करें।

5. ऋग्वेद

कुल मन्त्र संख्या 10552

ऋग्वेद ज्ञानकाण्ड है। ज्ञान में गुण और गुणी का वर्णन एवं उसका विश्लेषण होता है। अतः इसका नाम ऋग्वेद है। ऋग्वेद वह ज्ञान है जिसमें पदार्थों के गुणों का और धर्मों का वर्णन है। 'ऋच स्तुतौ धातु' से ऋक् पद बना है। अर्थात् जो गुण और गुणी के ज्ञान का वर्णन करता है वह ऋक है। समस्त मूर्त पदार्थ ऋग् से प्रसिद्ध होते हैं, अतः ज्ञान-काण्डात्मक ऋग्वेद का नाम सार्थक है। इसको पढ़कर यथावत् जानके संसार में उपकार के लिये प्रयत्न होवे।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥ (ऋ 1/1/6)

जो न्याय, दया, कल्याण और मित्रभाव करने वाला परमेश्वर है, उसी की उपासना करके जीव इस लोक और मोक्ष के सुख को प्राप्त होता है। क्योंकि इस प्रकार सुख देने का स्वभाव और सामर्थ्य केवल परमेश्वर का है, जो सब संसार को धारण करता है और परमाणु - परमाणु में व्याप्त है।

परमेश्वर की सामर्थ्य से रचे हुए सृष्टि के सब पदार्थ नित्य ही सुशोभित होते हैं। वायु से ही सब प्राणी जीवित हैं तथा शब्दों के उच्चारण और श्रवण करने को समर्थ हैं। प्राण और अपान से ही शरीर की रक्षा और वृद्धि होती है। अग्नि तीव्र वेग देने वाली है। पुरुषार्थी कारीगरों से शिल्प-विद्या की सिद्धि होती है।

नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उपह्वये।
मधुजिह्वं हविष्कृतम्॥ (ऋ 1/13/3)

यह भौतिक अग्नि अग्निहोम के निमित्त युक्ति से ग्रहण किया हुआ प्राणियों की प्रसन्नता कराने वाला है, उस अग्नि की सात जीभें हैं काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सूधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरूपी। इन सबसे उपकार

लेवें, विज्ञान बढ़ावें, ये शिल्प-विद्या के अद्वितीय कारण हैं। बिजली अग्नि की सूक्ष्म अवस्था है, सो सभी स्थूल पदार्थों के अवयवों में व्याप्त होकर उसको धारण और छेदन करती है, इस ज्ञान को पूरा जानो।

ईश्वर ने आज्ञा दी है कि विद्वानों को वेद-विद्या का प्रचार करने में कभी थोड़ा भी विलम्ब तथा आलस्य नहीं करना चाहिये। वेद अनेक विद्या का गुणवाला शब्दरूपी महासागर है। परमेश्वर परोपकारी वेद-प्रचार करने वाले मनुष्यों का सहाय करने वाला होता है। सूर्य और वायु की पदार्थ-विद्या से उपकार लेने के लिये इन्हें युक्त करें और सुलभ ऊर्जा संकलित करने का आविष्कार करें।

हवन वायु, वर्षा, जल व सूर्य किरणों की शुद्धि करता है। इससे सब जीवों को सुख प्राप्त कराकर उन्हें बलवान् बनाता है। ईश्वर ने सूर्य को रचकर कक्षा में स्थापित किया है। जो समीप के लोकों को चुम्बक के समान खींचने में समर्थ है। इस पर अन्वेषण से बड़ा ऐश्वर्य मिलेगा। सब में व्याप्त और सबको देखने वाले परमेश्वर को जानकर उसकी आज्ञा के अनुकूल पुरुषार्थी होने से विद्या व लक्ष्मी सब मिलते हैं।

ईश्वर-प्रार्थना से हम जो पदार्थ चाहते हैं, सो हमारे अत्यंत सत्य-परायण व कर्मनिष्ठ पुरुषार्थ के द्वारा ही ईश्वर द्वारा देय हैं। ईश्वर-गुण अनंत हैं। ईश्वरीय गुणों का यथाशक्ति पात्र बनना ही उपासना है।

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधि सहस्रसामृषिम्॥ (ऋ 1/10/11)

जो मनुष्य प्रेम से विद्या का उपदेश करने वाले होकर सर्वदा शुद्ध परमेश्वर की स्तुति के साथ आश्रय करते हैं वे ऋषि भाव को प्राप्त होकर मनुष्यों को विद्या से विद्वान् करते हैं। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सबको आनन्दित कर तथा मेघ को उत्पन्न कर वर्षाता है और अन्धकार का निवारण कर प्रकाश फैलाता है वैसे ही वेद का पठन पाठन व अनुसंधान सबको सुखी, शरीर, बल और आत्मबल से युक्त करके जीवन को प्रकाशित करता है।

वेद मनुष्यों को पावन मार्ग पर ले जाता है, जो पावन प्रभु को जानने मानने से ही संभव है।

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव॥ (ऋ 8/24/24)

परमेश्वर सर्वज्ञ है अतः हम जीव उससे कुछ गुप्त नहीं रख सकते, इस हेतु इसको जान पाप से निवृत्त रहें।

निम्न-सूक्त में काल, संवत्सर, ऋतुचक्र, मास, दिन का सुन्दर वर्णन है।

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥

(ऋ 1/164/11)

बारह अरों (मासों) वाला एक चक्र (संवत्सर-चक्र) निरन्तर घूम रहा है। उन बारह अरों में प्रत्येक में 30 जोड़े पुत्र के समान स्थित हैं, उनको अलग-अलग करने से 720 होते हैं। ये 30 जोड़े दिन-रात रूपी जोड़े हैं। प्रत्येक मास में तीस दिन और तीस ही रात्रि मानने से 720 संख्या होती है पृथ्वी के कई भागों में ऐसा ही वर्तमान होता है। अन्य भागों में बारह चक्रों के समूह में से एक चक्र में 5 और जोड़ देने से 730 संख्या होगी। अर्थात् 365 दिन-रात के जोड़े। 365 X 2 = 730। इसी प्रकार अनेक मंत्रों में काल, दिशा, आकाश आदि का वर्णन है।

ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के प्रथम सूक्त के 10 मंत्रों में (2 से 11 तक) परमेश्वर के अनेक नामों का उल्लेख है। उस एक ही ईश्वर को ब्रह्म, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मणस्पति, वरुण, मित्र, अर्यमा, अंशु, त्वष्टा, पुरूवसुः, रुद्र, पूषा, द्रविणोदा, सविता, ऋभु, अदिति, इडा, भारती और सरस्वती नाम से पुकारा जाता है।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।

(ऋग्. 1/164/46)

ईश्वर एक ही है उस एक ही के अस्तित्व को ज्ञानी लोग बहुत नामों से पुकारते हैं।

6. यजुर्वेद

कुल मन्त्र संख्या 1975

यजुः शब्द यज धातु से बना है। जिसके देवपूजा, संगतिकरण और दान अर्थ हैं। चूंकि यजुर्वेद कर्मकाण्ड है, अतः वह क्रियामय है। सारी क्रियायें एवं गतियाँ देवपूजा, संगतिकरण और दान के अन्तर्गत आती हैं। क्रिया और गति का इससे अच्छा और कोई विभाग या वर्गीकरण नहीं हो सकता है। यह यन् + जू = अर्थात् ज्ञान, गमन, प्राप्ति और मोक्ष का समन्वय करते हुए प्रयत्न क्रिया के कौशल को प्रतीत कराने वाला है, अतः यह यजुः है।

यजुर्वेद के शुरु के मंत्रों में लिखा है, कि उत्तम-उत्तम कामों की सिद्धि के लिए मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना और यज्ञ अवश्य करने चाहियें। यज्ञ का साधारण अर्थ है, हवन करना। परन्तु व्यापक अर्थों में प्रत्येक कर्म जो बिना बदला चाहे परोपकारार्थ किया जाता है, यज्ञ कहलाता है। जैसे कुआ बनवाना, धर्मशाला बनवाना, औषधालय खोलना, पाठशाला खोलना इत्यादि। जो यज्ञ (हवन) किया जाता है इसमें भी तो यही भावना है। यज्ञ करने वाला घी, सामग्री केवल अपने ही उपयोग में न लाकर प्रज्वलित अग्नि में घृत और सामग्री की आहुति इस भावना से देता है कि दुर्गन्ध दूर हो, सुगन्ध फैले, रोगों का नाश हो, स्वास्थ्य की वृद्धि हो तथा पर्यावरण शुद्धि हो। याज्ञिक के अन्दर जहाँ बाहरी शुद्धि की भावना रहती है, वहाँ इस यज्ञ से उसके अन्दर परोपकार की भावना में वृद्धि होती है। यज्ञ में काम आने वाली इन समिधाओं, घी, सामग्री ने अपने आप को परोपकार में लगा दिया, अपने आपको जला दिया, तो क्या वे नष्ट हो गईं? नहीं उनमें से प्रकाश निकला उसके साथ चारों ओर सुगन्ध फैली, पर्यावरण शुद्ध हुआ। इसी प्रकार से जो मनुष्य अपने सर्वस्व को परोपकार में होम देता है, उसके जीवन में से प्रकाश फैलता है, जो कोटानुकोटि मनुष्यों के जीवन-पथ को उन्नत बनाने में सहायक होता है। अर्थात् जो व्यक्ति अपने जीवन को पवित्र बनाकर परोपकार के कार्यों में लगावेगा उससे संसार में सुख

शांति का विस्तार होगा, परन्तु जो व्यक्ति जीवन को बिना शुद्ध किये धन, पद, मानादि की इच्छा की भावना से परोपकार का काम करेगा, उससे दूसरों को सुख शान्ति मिलना तो दूर रहा, वह स्वयं भी दुःखी और अशान्त ही रहेगा। यज्ञमय जीवन बनाने के इच्छुक व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने बाहर भीतर से काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थपरता आदि दुर्गुणों को दूर करके सात्त्विकता, विनय, तप, त्याग आदि गुणों से युक्त जीवन को परोपकार में लगाना चाहिए। इसी से संसार का तथा स्वयं का कल्याण होगा।

यजुर्वेद 36/3 में गायत्री मंत्र -

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ओ३म् = सर्वरक्षक, भूः = प्राणाधार, भुवः = दुःखहर्त्ता, स्वः = सुखस्वरूप एवं सुखदाता है। तत् = उस सर्वव्यापक, सवितुः = सर्वजगदुत्पादक प्रेरक, देवस्य = कामना करने योग्य परमेश्वर के, वरेण्यम् = अतिश्रेष्ठ, भर्गः = क्लेश-नाशक स्वरूप को, धीमहि = हम धारण करें, उसका ध्यान करें। यः = जो पूजनीय परमेश्वर, नः = हमारी, धियः = बुद्धियों को, प्रचोदयात् = उत्तम कर्मों में प्रेरित करे।

पद्य :- प्राणप्रदाता संकट त्राता, हे सुखदाता ओ३म् ओ३म् ।
सविता माता पिता वरेण्यं, भगवन् भ्राता ओ३म् ओ३म्॥
तेरा शुद्ध स्वरूप धरें हम, धारण धाता ओ३म् ओ३म्।
प्रज्ञा प्रेरित कर सुकर्म में, विश्व-विधाता ओ३म् ओ३म्॥

यह मंत्र बुद्धि को बढ़ाने वाला है, विद्यार्थियों को तो इसका जप करके लाभ लेना चाहिए। अमृत भरा है सब वेद मंत्रों में और सब समस्यायें इन प्रामाणिक शोध-निष्कर्षों से हल इस तरह हो जाती हैं, जैसे चाबी से ताला खुल जाता है। यजुः अध्याय 31 पुरुष-सूक्त में वर्ण-व्यवस्था निर्धारित की है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कर्मों के अनुसार। इसे अपनाने से जात-पांत, मजहब, ऊँच नीच से हर समय खड़े रहने वाले झगड़े, फिसाद, मन मुटाव सब खतम होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' बन जावेगा।

यजु. अध्याय 40 के मंत्र में ; साम्यवाद, समाजवाद, पूंजीवाद सबको मिलाकर इनका सही हल दर्शाया है, त्यागवाद = यज्ञवाद।

यज्ञवाद

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ (यजु. 40/1)

संसार में जो कुछ भी चराचर वस्तु है, वह सब ईश्वर से आच्छादित है। हे मनुष्य तू धन का लालच न करता हुआ, जो अपने पास है खुद को ट्रस्टी मानकर ही जरूरत की चीजों का ही भोग कर, बाकी धन तो भगवान् का ही है।

मनुष्य ईश्वर को एकदेशीय न मानकर उसे विभु व्यापक रूप में माने, अर्थात् जिस प्रकार प्रत्येक वस्तु आकाश में है और प्रत्येक वस्तु के भीतर भी आकाश है, उसी प्रकार ईश्वर भी जगत् में ओत-प्रोत हो रहा है। कोई वस्तु ऐसी नहीं, जो ईश्वर में न हो और जिसमें ईश्वर न हो। मनुष्य वस्तुओं में केवल प्रयोगाधिकार समझे तथा प्रयोग समाप्त होने पर उन्हें छोड़ देवे। मृत्यु पदार्थों को छीनती है परन्तु ममता का वशीभूत प्राणी उन्हें देना नहीं चाहता। इसी कलह का नाम मरने का दुःख है। मृत्यु वास्तव में दुःखप्रद नहीं सुखप्रद है। अतः प्रयोग के बाद वस्तुओं को छोड़ने से उसके पास कुछ रहता ही नहीं, जिसे मृत्यु आकार अपहरण करे इसलिए उसके लिए मृत्यु का समय दुःखमय न होकर सुख और शांति का होता है। अतः ममता से नाता तोड़ने से सुख ही सुख होता है।

अपने अज्ञान को दूर करने के लिये ईश्वर के गुणों का चिन्तन करना उपासना है।

स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु। (यजु. 32-8)

वह सब प्रजाओं में समाया है। वेद पुरुषार्थ की शिक्षा देता है। अच्छा या बुरा शरीर पाना कर्मों के अनुसार है।

तदेवाग्निस् तदादित्यस् तद्वायुस् तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः॥ (यजु. 32-1)

वही अग्नि है, वही आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है। वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, वही आपः तथा प्रजापति है।

7. सामवेद

कुल मन्त्र संख्या 1875

सामवेद उपासना-काण्ड है। अतः सामवेद का नाम भी सार्थक ही है। यास्काचार्य ने निरुक्त दैवलकाण्ड में साम के निर्वचन दिए हैं :-

साम मंत्र ऋचा से मापकर बने हैं, अतः वह साम है। चूंकि समस्त विक्षेपों को वे क्षीण करके परे फेंकते हैं, अतः उपासना में सहायक होने से वे साम हैं।

नैदान आचार्य जो कि निदान सूत्रों के कर्त्ता थे, ने व्याख्या में साम का नाम सा + अम किया है। सा द्युलोक है और अमः यह पृथ्वीलोक है अर्थात् दोनों का समन्वय साम है। 'सा' ऋक् है और अमः सामगान है अतः दोनों का समन्वय साम है।

'सा' विद्या का नाम है और 'अम' कर्म का नाम है। दोनों का समन्वय साम अर्थात् उपासना है।

'सा' सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है और अम जीव है। दोनों का जिसमें सम्मिलन हो वह साम है, उपासना है।

शन्नो देवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः॥ (सामवेद मं. 33)

परमात्मा की दिव्य शक्ति माँ हमारे मनचाहे आनन्द के लिये सुखदात्री होवें। हमारी तृप्ति के लिए सुखदा होवें और अभीष्ट सुख को वर्षावें।

वेद में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, विद्युत आदि सब नाम उपासना-प्रकरण में ईश्वर के ही बताए हैं -

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवां उषर्बुधः॥

(सामवेद मं. 40)

जो प्रभात काल में उठकर वेदों के प्रकाशक अमर परमात्मा का ध्यान, उपासना करते हैं, उनकी ज्ञानेन्द्रियों में चेतना जाग्रत हो जाती है।

बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ (साम. 140)

अविद्या-नाशक, अखण्ड आनन्द-स्वरूप शक्तिमान् परमात्मा हमारी प्रार्थना सुनें और मन को बोध कराने वाला होवें।

सुन्दर पुरुषार्थ का सेवन करते हुए मनुष्य, हृदय में साक्षात् हुए परमेश्वर को उपासित करते हैं। (साम 175)

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ (साम 197)

हे परमात्मन् ! मन की वृत्तियां आप में लगें, जैसे नदियां समुद्र में। आपसे बढ़कर कोई नहीं है। प्यासा मृगादि जन्तु जैसे जलभरे जलाशय को प्राप्त होकर प्यास बुझाते हैं, उसी प्रकार उपासक; परमेश्वर की उपासना से तृप्त हो जाता है।

ईश्वर की व्यापकता का वर्णन कितना सुन्दर है -

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमि रुत स्युः।
न त्वा वाजिन्त्सहस्त्रं सूर्य्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥

(सामवेद मं. 278)

सैकड़ों द्युलोक, पृथ्वीलोक, असंख्यात, सूर्यलोक भी आप परमेश्वर को नहीं व्याप सकते। आप अनन्त और सबसे बड़े हैं।

अभित्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियम् इन्दं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत॥

(सामवेद मंत्र 376)

हे मनुष्यों ! उस काम-पूरक बहुतों से पुकारे हुए वेद-ऋचाओं से जानने योग्य, धन के समुद्र परमात्मा को वाणियों से प्रसन्न करो। जिसकी सत्ता किरणें सी मनुष्य मात्र में व्यापकर सर्वत्र वर्तमान हैं। परमानन्द भोगने के लिए उस अत्यंत पूजनीय मेधावी प्रभु को सर्वतः पूजित करो।

इन्द्र मीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत।
सहस्त्रं यस्य रातय उन वा सन्ति भूयसीः॥ (सामवेद मंत्र 1252)

धारण, आकर्षणादि विविध बल से ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की प्रशंसा वेद-मंत्रों से सर्वतः करो।

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि।
धर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्॥ (सामवेद 1431)

परमेश्वर ने कच्ची ओषधियों में पक्के रस को प्रेरित किया और सूर्य को द्युलोक में ऐसे युक्ति से रखा है कि वह सब ऋतुओं में क्रम-विभाग-पूर्वक तपता और आकर्षण से पृथ्वी एवं नक्षत्रों को रखता है। यह अद्भुत परन्तु ज्ञान पूर्वक महाकार्य है। जीवों को जिन्दा रखने के लिये वायु की व्यवस्था की है। ऐसे महत्त्व वाले पूर्ण परमात्मा की स्तुति साम-गान से करो।

परमेश्वर के द्वारा ही तेजस्वी प्रकाश-बल वाला सूर्य बना है, जो सबका धारक पोषक है और शीघ्र मनुष्यों के शत्रु सूक्ष्म दुष्ट जन्तुओं को नष्ट कर डालता है और सूर्य के उदय होने के पश्चात् सब प्राणी प्रसन्न होते हैं। सूर्य ही कर्मात्मा है। सूर्य ही रसाल पत्र पुष्प फलादि के द्वारा स्वादु से स्वादु और मधुर से अति मधुर रस को जुटाता है।

जैसे सूर्य की किरणें उदय होकर मनुष्यादि प्राणियों की आंखों को सहायता देती हैं, वैसे ही परमात्मा से वेद प्रकट होकर मनुष्य की बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रवृत करते हैं।

परमेश्वर कभी किसी के किसी कर्म को निष्फल नहीं करता, न किसी निरपराध को दंड देता है किन्तु इस जन्म और पूर्व जन्मों के कर्मों का कर्मानुसार फल अवश्य देता है। (सामवेद मं. 300)

य एक इद्वि दयते वसु मर्ताय दाशुषे।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग॥ (सामवेद 389)

जो सर्वेश्वर जिसके कर्मों के प्रति कोई मनुष्य शंका का एक शब्द भी नहीं बोल सकता, ऐसा परमेश्वर दानी मनुष्य के लिए शीघ्र दानानुसार धनादि विशेष करके देता है। परमात्मा ने ही औषधि, जल, गौ, अंतरिक्ष, पृथ्वी और उसके पदार्थों को फैलाया है। हे प्रभो! आपने ही ज्योति से अन्धकार को अस्त व्यस्त किया है। उस निमित्त परमेश्वर से ही ब्रह्माण्ड देह उत्पन्न होता है। (सामवेद 604)

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महां असि।। (सामवेद मं. 1026)

परमेश्वर सबको दबा सकने वाला है और सूर्य को प्रकाश देता है, जगत्-स्रष्टा सर्वव्यापी है।

इस परमात्मा की ध्यान-शाला में हमारी पवित्र बुद्धि सुधरती ही है। उपासित परमात्मा गम्भीर धारणा से ध्यान किया हुआ भक्तों को प्राप्त होता है। परमात्मा की प्राप्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द उपासकों के हृदय में लहर सी उठाता है और मग्न कर देता है। इसको वे लोग ही जानते हैं, जिन्हें उसका अनुभव है।

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम्।
रसा दधीत वृषभम्।। (सामवेद मं. 1470)

वर्षा करने वाले होमाग्नि का अग्न्याधान करो और फिर सोमरूप अन्न अभिषुत होने पर द्यावा भूमि को व्याप्त करने वाले घृत - आज्य का उसमें आसेचन करो।

अग्नि मरण-धर्मा न होने से अमर, प्रकाशमान होने से देव, देवों का दूत होने से होता कहलाता है। वह प्रकाश से बुद्धि का प्रेरक है, अतः नित्य हवन करो।

स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः।
आ देवान्वक्षि यक्षि च।। (सामवेद मं. 1475)

वह अग्नि हमारे यज्ञ में हव्य पदार्थों के संसर्ग से हर्षकारी लपटों से सोम बन बड़े भारी देवों का आह्वान और यजन करता है।

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः।
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिन्न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः
(सामवेद मं. 68)

विद्वान् लोग अग्नि के गुणों को वेद-वाक्यों से बलिष्ठ कर, जानकर, आग्नेय बल उत्पन्न कर, अनेक विध अस्त्रों पदार्थों को उत्पन्न करें और देश को समृद्ध बनावें। अतः अग्नि के गुणों से नये नये आविष्कार करने चाहिए।

हवन का अग्नि, घी खाने वाला, शुद्धि करने वाला है जो दूत बनकर पर्यावरण शुद्ध करता है, मेघों में बिजली धारण करता है, वर्षा वर्षाता है (सामवेद मं. 1219) वृष्टि से खेती सम्पन्न करता है। यज्ञ-कर्म से बहुत अन्न, धन व बल प्राप्त होता है। (सामवेद मं. 1230)

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः।
एन्द्रस्य जठरं विश॥ (सामवेद मं. 1209)

अत्यंत हर्षकारक, गमनशील, किरणों से सना हुआ सोम सूर्य के उदर आकाश में घुसता और शुद्धि करता है।

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे।
वव्रिवाँ सं महीरपः॥ (सामवेद मं. 494)

यज्ञ के सोम! जो तू भारी जलों को रोके हुए मेघ का हनन कर, विद्युत वा सूर्य को तृप्त करता है, वह तू अग्नि में होमा जाता है।

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे।
अच्छावभृथ मोजसा॥ (सामवेद मं. 1797)

होम द्वारा निकले हुए हर्षकारक हर्ष के वर्षाने वाले हरे बलवान् सोम को प्रवाहों के निमित्त वर्षा करने वाले वायु विशेष इन्द्र के लिये होम द्वारा भेजते हैं - सोम से मिश्रित अग्नि में हुत जो हवि भाग हैं, वे अपने स्थान को जानते हुए मेघजलों से परस्पर जा मिलते हैं। जैसे बछड़े गौओं से जा मिलते हैं तद्वत् ।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः॥
जनिताऽग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥
(सामवेद मं. 527)

अमृत परमात्मा बुद्धियों का उत्पादक है। द्युलोक का उत्पादक, पृथ्वी का उत्पादक, सूर्य, विद्युत और यज्ञ का उत्पादक है। वह याज्ञिकों को प्राप्त होता है।

वेद-मंत्रों के साथ सुगन्धित, मिष्ट, पुष्ट, रोगनाशकादि द्रव्य अग्नि में हुत किये जाते हैं। उनसे बिजली और मेघ का आप्यायन अर्थात् वृद्धि होती है जो यजमान इनके मुख में इनकी पोषक सामग्री भरे व समृद्ध करे, वह सुखी और चिरञ्जीव होता है।

जो मनुष्य अग्नि का भले प्रकार से उपयोग करना जानते हैं और होमादि में काम में लेते हैं और परमेश्वर की उपासना करते हैं, उनका बल क्षीण नहीं होता, उनके अन्न का पाचन, शरीरादि की वृद्धि और रक्षा होती है।

यज्ञाग्नि मनुष्यों के देहस्थ और आकाश में वायु आदि में स्थित अग्नियों को अनुकूल बनाकर सब कामों को सफल करता है। होम से सुसेवित अग्नि द्वारा पुष्कल धन-धान्य की प्राप्ति, आकाश की स्वच्छता, धूप, वर्षा, प्राणवायु आदि का ठीक-ठीक बर्ताव और प्रकाश होता है।

अग्निमय सूर्य के प्रकाश से पूषा देवता की उत्पत्ति है। यह पृथ्वी के समीप समीप सूर्य के प्रकाश किरणों से पृथ्वी पर के समस्त प्राणी, अप्राणी व ओषधि वनस्पति आदि का विशेष रूप से पोषण करता है। इसी से प्रजा पुष्ट होती है और पूषा की पुष्टि यज्ञ से होती है।

सूर्यादि देव जैसे स्वाभाविक होम करते हैं, वैसे मनुष्यों को भी हवन करना चाहिए। जगत् को धन धान्य आरोग्यादि से बढ़ाते हुए परमात्मा ने स्वयं सूर्यादि लोकरूपी बड़े विस्तृत यज्ञ-कुण्डों में अग्न्याधान करके उनमें होम कर रखा है, इसे जानकर मनुष्य लोग भी हवन करें।

द्युलोक वृष्टि आदि से भूमि को और भूमि-लोक यज्ञ (=हवन) योग्य ओषधि, वनस्पत्यादि की उत्पत्ति और उसके द्वारा हुए यज्ञों से द्युलोक को पवित्र करता है, इस प्रकार दोनों लोक एक दूसरे के पावक हैं।

सूर्य किरणें यज्ञ से भाग लेती हैं जैसे छोटी नदियाँ बादलों से जल रूपी भाग लेती हैं।

जो लोग उषाकाल में उठकर यज्ञ करते हैं, उस यज्ञ द्वारा उषा को हव्यान्नवती बनाते हैं, वे अरुणोदय के उस उत्तम प्रभाव से सौभाग्य पाते हैं।

8. अथर्ववेद

कुल मन्त्र संख्या 5977

अथर्ववेद विज्ञान-काण्ड हैं। जगत् के इन पदार्थों के अन्दर उस प्रभु की सत्ता को खोजने से यह अथर्व है। अथर्ववेद के मन्त्रों का ज्ञान होने से मनुष्य के सब पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं अर्थात् मनुष्य सफलता प्राप्त कर लेता है। महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में लिखा है कि वेदों की वाक्य रचना बुद्धि- पूर्वक है अर्थात् सभी विषय तर्क-संगत और बुद्धि-सम्मत हैं। अथर्ववेद में चिकित्सा-शास्त्र (शरीर-विज्ञान) का वर्णन विद्यमान है।

पं. सातवलेकर जी के अनुसार अथर्ववेद में अन्नसिद्धि, बुद्धि की वृद्धि के उपाय, ब्रह्मचर्य का महत्त्व, राष्ट्र-भक्ति, राष्ट्र-उन्नति के उपाय, गाय बैलादि पशुओं का संवर्धन, कृषि, व्यापार, धन-प्राप्ति के साधन, पारिवारिक जीवन, देश-देशान्तरों में गमनागमन, मन की एकाग्रता, ब्रह्म का स्वरूप, समाज और राष्ट्र में शांति-स्थापना के उपाय इत्यादि विविध विषयों का वर्णन है।

जो मनुष्य माता-पिता, गुरुजनों के सान्निध्य में रहता है और उनके उपदेश सुनकर आदर्शों का अनुकरण करता है वह सुख सम्पदा तथा जीवन में दक्षता ओज-तेज तथा दीर्घायु को प्राप्त करता है। (प्रथम काण्ड)

ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुये लिखा है, कि वह परम ब्रह्म समस्त विश्व के कण कण में विद्यमान है। ब्रह्मज्ञानी उस ब्रह्म का दर्शन (अनुभव) अपने हृदय (गुहा) में करता है।

ब्रह्मज्ञानी परमात्मा का अनुभव कर उसके स्वरूप का उपदेश भी करे। जिससे सम्माननीय और श्रद्धेय हो जाता है। परमात्मा हमारा माता-पिता और बन्धु है, वह सब लोक लोकान्तरों को जानता है। ईश्वरीय गुणों को पुरुषार्थ से धारण कर व्यवहार में लेना ही जीवन की महती सफलता है।

जो मनुष्य दिन रात के समान नियमित जीवन व्यतीत करते हैं, परिश्रम करते हैं तथा परमेश्वर (वेद) की आज्ञा का पालन करते हैं वे यशस्वी होते हैं। जैसे माता-पिता सन्तान के साथ प्रीति रखते हैं, वैसे ही पुरुषार्थी पर परमात्मा कृपा-दृष्टि रखता है।

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना, आदर्श विद्या मंदिरों (स्कूलों) का एवं माता-पिता, आचार्यों का मुख्य कर्म है। विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिये। लड़के और लड़कियों की पाठशाला दूर-दूर होनी चाहिये। कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष ही अध्यापिका, अध्यापक, भृत्य, अनुचर होने चाहियें। विद्यार्थी उत्तम शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा से बलयुक्त बनें तथा किसी प्रकार की कुचेष्टा, आलस्य प्रमाद न करें। सत्याचार से वेदादि शास्त्रों की सत्य विद्याओं को धर्मानुष्ठान करते हुए पढ़ें और पढ़ावें। अग्निहोत्र करते हुए पठन-पाठन करे करावें। जिसके वाणी और मन शुद्ध तथा सुरक्षित रहते हैं वही सब वेदों के सिद्धान्तरूप फल को प्राप्त होता है। जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें, क्योंकि धर्माधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक ठीक नहीं होता।

अथर्ववेद को शिल्प-विद्या भी कहते हैं। पदार्थ गुण, विज्ञान, क्रिया कौशल, नानाविध पदार्थों का निर्माण, पृथ्वी से लेकर आकाश पर्यन्त की विद्या को सीख कर ऐश्वर्य बढ़ावें। ज्योतिष शास्त्र, सूर्य सिद्धान्तादि जिसमें बीज गणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या को सीखें। अथर्ववेद में ईश्वर के वरुण नाम से उसकी सर्वज्ञता का सुन्दर वर्णन है :-

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ सन्निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः॥

(अथर्व 4-16.2)

जो कहीं खड़ा हुआ है, ठहरा हुआ है, जो चल रहा है, जो किसी को ठग रहा है, जो छिपकर विचर रहा है अथवा आतङ्क मचा रहा है और यदि कोई दो व्यक्ति मिलकर किसी गुप्त स्थान में बैठकर कुछ मन्त्रणा भी कर रहे हैं, तो वह वरुण परमेश्वर तीसरा होकर उन सबको जानता है।

अथर्ववेद से प्राकृतिक चिकित्सा का सैद्धान्तिक पक्ष संक्षेप में प्रस्तुत है -

प्रकृति भी ईश्वर जीव की तरह नित्य हैं। परब्रह्म परमेश्वर सृष्टि रचना के समय प्रकृति में योजनाबद्ध तरीके से स्पंदन करता है, जिससे सूर्य, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, वायु आदि कार्य रुप में आते हैं। हमारे शरीर में विकृति उत्पन्न होती है तो प्रकृति - साधनों से बने शरीर की विकृति प्राकृतिक साधनों से ही सरलता

से दूर हो जाती है। अधिकांश बीमारियां वायु, जल, अन्न के प्रदूषण के कारण होती है। प्राकृतिक चिकित्सा में प्राकृतिक साधनों जैसे आकाश, वायु, अग्नि (सूर्य, प्रकाश) जल, अन्न (ओषधि) को प्रयोग में लाकर रोग का निवारण करना होता है।

आकाश :- खुले आकाश में अधिक से अधिक रहना चाहिये।

वायु :- प्राणायाम, भ्रमण कर स्वस्थ रहना व बीमारी से मुक्ति पानी चाहिये। वर्तमान में वायु प्रदूषित हो गई है। टोकियो जैसे शहर में जगह जगह लगे ऑक्सीजन के सिलेण्डरों से थके मांदे लोग गैस लेकर अपने को कार्य योग्य बनाते हैं। वेदों में हवा शुद्ध करने का विधान हवन करना और पेड़ लगाना बताया है।

सूर्य :- सूर्य-किरणों द्वारा रोग-निवृत्ति का वर्णन वेदों में है।

जल :- उषः-पान, शुद्ध जल जीवन है। अथर्व 4/7/1

अन्न (ओषधि) :- विधिपूर्वक शुद्ध अन्न सेवन करें। वनस्पति ओषधियां अत्यंत कारगर हैं।

अथर्ववेद के पृथ्वी-सूक्त (कांड 12 सूक्त 1) में स्पष्ट वर्णन आया है कि पृथ्वी अपने गर्भ में नाना धातुओं को छिपाये हुए हैं, हमको उनका खनन समझदारी से करना है। उन्हें पूर्ण रूप से नष्ट नहीं कर देना है। खानों का दोहन करना है, शोषण नहीं। अथर्व 12.1.35 कहता है -

यत् ते भूमे बिखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा मे मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्॥

खेद है, वेद के इस मन्त्र पर ध्यान न देकर पृथ्वी माता के हृदय को लगातार खोदा जा रहा है। खोद कर पत्थरों के पहाड़ खड़े कर दिये हैं जो भविष्य में भूकम्प तथा ज्वालामुखी को जन्म देंगे।

दान :- दान के बारे में सुन्दर वर्णन है -

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥मनु.॥

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेद-विद्या का दान अति श्रेष्ठ है। इसलिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से वेद-विद्या (सत्य-विद्या) की वृद्धि में करना चाहिये।

9. ईश्वर, जीव प्रकृति

वेदों में तीन पदार्थों को माना गया है, जो न कभी उत्पन्न होते है व न नष्ट होते हैं। वे तीन अनादि तत्त्व है- ईश्वर, जीव, प्रकृति। जिससे संसार बनता वह तत्त्व प्रकृति है, जिनके लिये बनता है, वे जीव हैं और जो बनाता है, वह ईश्वर है।

ईश्वर

सच्चिदानंद-स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, निराकार, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।

ईश्वर की व्यवस्था से यह सारी सृष्टि नियमानुसार चल रही है। सूर्य, प्रकाश, गर्मी दे रहा है, हवा प्राण, (जीवन) देता है। इसी तरह सृष्टि की सब व्यवस्थायें ईश्वर ने सुचारु रूप से चला रखी हैं। ईश्वर सृष्टि का रचयिता, संचालक, प्रलयकर्ता, जीवों को कर्मों के अनुसार फल देता और वेद-ज्ञान-प्रदाता है।

कोई कहे कि ईश्वर कहां है, कैसा है, क्या करता है, उसका संगत समाधान यह है कि जीव शरीर में कहां है, कैसा है, क्या करता है। मानना पड़ता है कि शरीर जीव से ही कार्यरत है, जीव निकलते ही शरीर मृत (शव) है। इसी तरह ईश्वर से ही संसार कार्यरत् है, जो कि संसार के कण कण में व्याप्त है। इसी तरह सृष्टि की जो नियमानुसार व्यवस्था है, वह ईश्वर द्वारा की हुई है। वेद, वेदांग में ईश्वर का वर्णन अद्वितीय है। शरीर में कितने अवयव कल कारखानों की तरह लगातार अपना अपना काम कर रहे हैं, रस बना रहे हैं, पुष्टि कर रहे हैं, क्या ये काम आदमी कर रहा है, नहीं इन सबको व्यवस्था देने वाला ईश्वर ही है। अरे! खेत में बोते वक्त बीज औंधा पड़ता है, तो भी वह सीधा होकर अंकुर ऊपर निकलता है, यह है ईश्वरीय व्यवस्था। क्रियात्मक रूप से ईश्वरीय गुणों को अपनाने से आनन्द ही आनन्द का स्रोत बह निकलता है। परमेश्वर की वेद-विद्या मूल को प्राप्त होकर मनुष्यों में विद्या रूप वृक्ष विस्तृत हुआ है और ज्ञान विज्ञान की उन्नति करनी भी सहज हुई है, क्योंकि उसके सभी गुण सत्य हैं।

जीव

जो चेतन, अल्पज्ञ, आकार-रहित, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य है, वह जीव कहलाता है। शरीर जीव से ही क्रियाशील है। हर प्राणी के शरीर में जीव है, पर प्राणी खुद भी उसको देख नहीं सकता, अनुभव करता है, जैसे भूख, प्यास, सुख दुःख, आदि को। मन, वचन, कर्म द्वारा किये गये कर्म जीवात्मा में संस्कारित होते हैं और ईश्वर-व्यवस्था अनुसार कर्मफल भोगने ही पड़ते हैं। जो प्राणी जड़ शरीर को ही सब कुछ समझता है, उसकी बुद्धि जड़ता की तरफ अग्रसर होती रहती है और वह बंधन में फंसता जाता है। शरीर की इच्छापूर्ति से जो सुख मिलता है वह दुःख मिश्रित है। जीवात्मा अगर ईश्वर की प्रार्थना, उपासना और ईश्वरीय-गुण-युक्त कर्मों को करने में बढ़ता रहता है तो उसे आनन्द मिलता है और इसकी पराकाष्ठा मोक्ष- प्राप्ति है।

मृत्यु की परछाया शरीर के पीछे चलती है, शरीर रूपी माल पराया है। अतः साधन शरीर को अपना न समझकर, जीवात्मा द्वारा पुरुषार्थ से शुभ कर्मो में लगाकर ईश्वर-प्राप्ति करना है। वेद-वेदाङ्ग में इसका वर्णन अति प्रभावी है। आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य अर्थात् अन्त में भस्म होने वाला (पंच भूतों में विलीन होने वाला) इसलिये कर्मशील जीवात्मा अपने कर्मों के विषय में विचारे और ओ३म् का स्मरण करे (यजु. अ.40/15)

प्रकृति

इस संसार का उपादान कारण (Material Cause) मूल प्रकृति है, जो सत्त्व, रज, तम, नामक तीन जड़ सूक्ष्म पदार्थों (परमाणुओं) की साम्यावस्था का नाम है। इन तीनों तत्त्वों की असाम्यावस्था से महत्तत्त्व (बुद्धि तत्त्व) बनता है। इस महत्तत्त्व से अहंकार नामक तत्त्व बनता है। अहंकार तत्त्व से 5 ज्ञानेन्द्रियां (नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक्), 5 कर्मेन्द्रियां (हस्त, पाद, वाणी, उपस्थ = मूत्रेन्द्रिय, पायु = मल त्यागने की इन्द्रिय), 1 मन, 5 तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) बने व तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथ्वी बनते हैं।

ये सब ईश्वर द्वारा जीवों के कल्याण और सुख के लिये रचे जाते हैं। इनमें से एक के बिना भी प्राणियों का जीवन नहीं चल सकता है।

10. पातंजल योग-शास्त्र

महर्षि पतंजलि ने अष्टाङ्ग-योग-विधायक योग-सूत्रों में मनुष्य मात्र के जीवन को सफल व आनन्दमय बनाने के लिये गागर में सागर भर दिया है। वेद-साहित्य मानव को जीना सिखाते हैं, मानवता का व्यवहार करना सिखाते हैं। योग के निम्न आठ अङ्ग हैं -

1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम,
5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान, 8. समाधि

यम

(क) अहिंसा :- शरीर, वाणी तथा मन से सब काल में समस्त प्राणियों के साथ वैरभाव (द्वेष) छोड़कर प्रेमपूर्वक व्यवहार करना अहिंसा कहलाती है। अहिंसक के सत्संग व उपदेशानुसार आचरण करने से अन्य व्यक्तियों का अपनी अपनी योग्यतानुसार वैर भाव छूट जाता है।

(ख) सत्य :- जैसा देखा हुआ, सुना हुआ, व पढ़ा हुआ व अनुमान किया हुआ ज्ञान मन में है, वैसा ही वाणी से बोलना और शरीर से आचरण में लाना 'सत्य' कहलाता है। सत्य पर आचरण करने से प्राणी जिन जिन उत्तम कार्यों को करना चाहता है, वे सब सफल होते हैं।

(ग) अस्तेय :- किसी वस्तु के स्वामी की आज्ञा के बिना उस वस्तु को न तो शरीर से लेना, न लेने के लिए किसी को कहना और न नही मन में लेने की इच्छा करना 'अस्तेय' कहलाता है। अस्तेय - पालक विश्वासपात्र, श्रद्धेय बनकर जिन जिन उत्तम कार्यों को करना चाहता है वे सफल होते हैं।

(घ) ब्रह्मचर्य :- मन तथा इन्द्रियों पर संयम करके वीर्य आदि शारीरिक शक्तियों की रक्षा करना, वेदादि सत्य शास्त्रों को पढ़ना तथा ईश्वर की उपासना करना 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है। ब्रह्मचर्य से शारीरिक और बौद्धिक बल की प्राप्ति होती है। आज के परिवार नियोजन में वीर्य की रक्षा तो गौण हो गई। वीर्य परिपक्व न होने से कमजोर, अपुष्ट प्राणियों के ऐसी ही सन्तति होती है। कुएं में ही भांग पड़ गई है, भौतिकता की हद है। जिस डाल पर बैठा है, उसी को काटना चरितार्थ हो रहा है। वेदों में इस बीज ब्रह्मचर्य की विषद व्याख्या है। इसे पालने से बीमारियाँ भी नगण्य रह जावेंगी।

(ङ) अपरिग्रह :- अनावश्यक पदार्थ व विचारों को संग्रह न करना 'अपरिग्रह' है। इसे पालनकर्त्ता व्यक्ति में आत्मस्वरूप को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है, अर्थात् उसके मन में 'मैं कौन हूँ, कहां से आया हूँ, कहां जाऊँगा, क्या करना चाहिए, मेरा क्या सामर्थ्य है' इत्यादि प्रश्नों के हल का सामर्थ्य बढ़ जाता है और अभिमान का नाश हो जाता है।

ये पांचों काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को वश में करने के लिए अत्यावश्यक हैं। ये उपासना की नींव हैं। अहिंसा से क्रोध को वश में किया जाता है। सत्य से मोह पर काबू पाया जाता है। अस्तेय से लोभ को वश में किया जाता है और ब्रह्मचर्य से काम पर विजय प्राप्त की जाती है और अपरिग्रह से अहंकार को वश में किया जाता है। इनकी सत्ता को समाप्त तो नहीं किया जा सकता, किन्तु इनको वश में किया जा सकता है। शेर जैसे पिंजरे में हो, तो दर्शनीय बन जाता है और खुला होने पर भयंकर। यही स्थिति काम, क्रोध आदि की है। यम साधक को काम, क्रोध आदि पर विजय दिला देते हैं। इनको जीते बिना साधना संभव नहीं है। इसलिए यम को उपासना में सर्वप्रथम स्थान दिया है।

नियम

(क) शौच :- इसे शुद्धता कहते हैं। शुद्धि दो प्रकार की है- बाह्य शुद्धि आंतरिक शुद्धि। शरीर, वस्त्र, पात्र, स्थान, खानपान तथा धनोपार्जन को पवित्र रखना बाह्य शुद्धि है तथा विद्या, सत्संग, स्वाध्याय, सत्यभाषण व धर्माचरण से मन-बुद्धि आदि अंतःकरण को पवित्र करना आंतरिक शुद्धि कहलाती है। इसी शुद्धि वाला मनुष्य परमात्मा को जानने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

(ख) संतोष :- अपने पास विद्यमान व पूर्ण पुरुषार्थ करने के पश्चात् जितना भी आनन्द, विद्या, बल, धनादि फल रूप में प्राप्त हो, उतने से ही संतुष्ट रहना 'संतोष' कहलाता है। संतोषी व्यक्ति की विषय भोगों को भोगने की इच्छा नष्ट हो जाती है। संतोष न रखने पर तो 'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः' के अनुसार भोग मनुष्य को खाने लगते हैं।

(ग) तप :- धर्माचरण रूप उत्तम कर्त्तव्य, कर्मों को करते हुए भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना 'तप' कहलाता है। तप से शरीर, मन तथ इन्द्रियाँ बलवान् तथा दृढ़ हो जाती हैं तथा तपस्वी के अधिकार में आ जाती हैं।

(घ) स्वाध्याय :- मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना, ओ३म् आदि पवित्र शब्दों का तथा पवित्र मंत्रों का जप करना तथा आत्म-चिंतन करना 'स्वाध्याय' कहलाता है। इससे आध्यात्मिक पथ पर चलने की श्रद्धा, रुचि बढ़ती है। ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों को अच्छी प्रकार जानकर ईश्वर के साथ संबंध भी जुड़ता है।

(ङ) ईश्वर-प्राणिधान :- समस्त साधनों को ईश्वर-प्रदत्त, मानकर तथा ईश्वर को अपने अन्दर बाहर उपस्थित मानकर, अपना सब कुछ ईश्वर को अर्पण करने को 'ईश्वर-प्राणिधान' कहते हैं।

आसन

ईश्वर के ध्यान केलिये जिस स्थिति में सुखपूर्वक स्थित होकर बैठा जाए, उस स्थिति का नाम 'आसन' है। जैसे सिद्धासन, पद्मासन, सुखासन आदि। आसन का अच्छा अभ्यास हो जाने पर मन की एकाग्रता बढ़ती है तथा सर्दी-गर्मी भूख-प्यास आदि द्वन्द कम सताते हैं। पढ़ाई भी शीघ्र समझ में आती है।

प्राणायाम

किसी आसन में स्थिरता-पूर्वक बैठने के पश्चात् श्वास-प्रश्वास की गति को रोकने छोड़ने की क्रिया 'प्राणायाम' कहलाता है। प्राणायाम करने वाले व्यक्ति का अज्ञान निरंतर नष्ट होता जाता है तथा ज्ञान की वृद्धि होती है। स्मृति-शक्ति तथा मन की एकाग्रता में आश्चर्यजनक वृद्धि होती है। वह रोग रहित होकर उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त करता है।

प्रत्याहार

मन के रुक जाने पर नेत्रादि इन्द्रियों का अपने अपने रूपादि विषयों के साथ सम्बन्ध नहीं रहता अर्थात् इन्द्रियां शांत होकर अपना कार्य बंद कर देती हैं, इस स्थिति का नाम 'प्रत्याहार' है। इससे योगाभ्यासी का इन्द्रियों पर अच्छा नियंत्रण हो जाता है अर्थात् मन को जिस विषय में लगाना चाहता है, लगा लेता है। विद्यार्थियों को विद्या पढ़ने शिक्षा ग्रहण करने में इससे अतुल लाभ होगा।

धारणा

आंखे बंद करके मन को मस्तक, भ्रूमध्य, नासिका, कण्ठ, हृदय आदि किसी एक स्थान पर केन्द्रित करने या रोकने का नाम 'धारणा' है। ईश्वर-विषयक-गुण, कर्म स्वभावों का चिंतन करने से धारणा में दृढ़ता आती है तथा ईश्वरीय गुण-कर्म-स्वभावों का मन शरीर पर सर्वोत्तम असर पड़ता है जिससे अच्छे ही अच्छे की तरफ लगाव हो जाता है।

ध्यान

धारणा के अविच्छिन्न (निरन्तर) अभ्यास से एक ही विषय में निमग्नता का नाम 'ध्यान' है। मनुष्य ध्यान के अभ्यास से ईश्वरानुभव को तथा व्यवहार-संबंधी सब कार्यों को दृढ़तापूर्वक, सफलता से सम्पन्न कर लेता है।

समाधि

शब्द-प्रमाण व अनुमान-प्रमाण के माध्यम से ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का निरन्तर चितंन करने से ईश्वर का प्रत्यक्ष होता है अर्थात् जीव ईश्वर के आनन्द में निमग्न हो जाता है तब उस अवस्था को 'समाधि' कहते हैं। वह समाधिकाल में ईश्वर से ज्ञान, बल, उत्साह, निर्भयता, स्वतंत्रता आदि की प्राप्ति करता है। इसी प्रकार बारम्बार समाधि लगाकर मनुष्य अपने मन पर जन्म-जन्मान्तर के राग द्वेष आदि अविद्या के संस्कारों को दग्ध-बीज-भाव अवस्था में पहुँचाकर (नष्ट करके) मुक्ति-पद को प्राप्त कर लेता है।

योग-दर्शन के द्वारा जीवन भर नीरोग, आनन्दित रहने का व परमात्मा को प्राप्त करने का तरीका (माध्यम) सुलभ है। मानव-जीवन का अन्तिम उद्देश्य सब दुःखों से छूटकर मोक्ष-प्राप्ति करना है। यह योग के मार्ग से ही संभव है। अतः योगाभ्यास प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये।

11. वेद-वेदाङ्गादि-विज्ञान तथा अनुसंधान

संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं जो गतिशील न हो। सूरज घूमता है, पृथ्वी घूमती है, चन्द्रमा गति में है, कोई नक्षत्र नहीं जो ठहरा हुआ हो। संसरण-शील होने से ही जगत् संसार कहलाता है। इसमें बड़ी से बड़ी वस्तु सूर्यादि गति में है तो छोटी से छोटी चीज परमाणु (Atom) विद्युत्कणों (Electrons) के उनके भीतरी केन्द्र के चारों ओर परिभ्रमण करने से सूर्य-मण्डल का एक विलक्षण उदाहरण बना हुआ है। फिर मनुष्य यहां किस प्रकार अकर्मण्य और आलसी बनकर जिन्दा रह सकता है। इसलिये वेद में कहा गया है कि मनुष्य को कर्म (पुरुषार्थ) करते हुए ही 100 वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिये, इसके सिवा जिन्दा रहने का दूसरा कोई मार्ग नहीं है। मनुष्य को ऊपर चढ़ना चाहिये नीचे नहीं गिरना चाहिये, अवनति का मार्ग तम अन्धकार का मार्ग है, इसमें नहीं गिरना चाहिये।

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश् चन्द्रमा गन्धर्वः ।

(यजु. 18.40)

सूर्य की सुषुम्ण नामक किरणों से चन्द्रमा प्रकाशित होता है।

आ ते सुपर्णा अमिनन्तं एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।

(ऋग्वेद 1.79.2)

सूर्य पर बड़े - बड़े खड्ड और काले धब्बे हैं जिनमें अपनी पृथ्वी जैसे ग्रह समा सकते हैं।

सूर्य की ऊर्जा का स्रोत या आधार सोम परमेश्वर है। (अथर्व 14.1.2.) उद्जन (हाईड्रोजन) वायु से सूक्ष्मतम रूप हेलियम की सत्ता सूर्य में यजु. 9/3 अनुसार कही गयी है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में ओजोन के लिए उल्व शब्द का संकेत है। पृथ्वी से अंतराल के पांच स्तर अभी बताये जाते हैं। गगन, अंतरिक्ष, द्यौ, नभ और आकाश। किन्तु यजुर्वेद में 18 वें अध्याय के मंत्रो में इस प्रकार के सत्रह स्तर वर्णित है जो अनुसंधान का विषय है।

वेदों के अंग ज्योतिष द्वारा सूर्य से पृथ्वी का अंतर 9 करोड़ 30 लाख मील बताया है, जिसे वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है। सूर्य पृथ्वी से 13 लक्ष गुना बड़ा है। यह ज्ञान इसी वेदांग से प्राप्त हुआ है। सौर काल-गणना, ऋतु आदि का ज्ञान, चान्द्रकाल-गणना यह सब विज्ञान ज्योतिष के हिमाद्रि नामक ग्रंथ से एवं वेदों से ज्ञात होता है। काल नित्य है, उसकी गणना की है। अथर्व 19/53 में ब्रह्म-दिवस 1000 चतुर्युगी का अर्थात् 4 अरब 32 करोड़ वर्ष का बताया गया है। वर्तमान सृष्टि प्रारंभ होकर 1 अरब 96 करोड़ 9 लाख 54 हजार वर्ष बीत गये हैं। वैज्ञानिक कहते हैं 2 अरब वर्ष हुए हैं। इसका अर्थ है कि सांप्रत के चरम विज्ञान-उत्कर्ष का मूल केवल वेदों में है। वेदों और आर्ष ग्रंथों में वर्णित सब विद्यायें, कलायें, वर्तमान विज्ञान पर शत प्रतिशत सत्य उतरी हैं। यही तो ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी सिद्ध होती है।

सृष्टि की रचना का उपनिषद्-वाक्य है -

तस्माद् वा एतस्माद् आत्मन आकाशः संभूतः, आकाशाद् वायुः वायोः अग्निः अग्नेः आपः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्यो अन्नम् अन्नाद् रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषो अन्न-रसमयः॥ (तैत्ति. ब्रह्मानन्दवल्ली अनु.1)

इसमें विज्ञान भरा पड़ा है। इसमें दिया हुआ क्रम संपूर्ण वैज्ञानिक है। ईश्वरीय ज्ञान निर्भ्रान्त, सत्य और ऋत ज्ञान है। सृष्टिक्रम वेद-मंत्र=मंत्र-वचन अनुसार है तथा सब बुद्धिपूर्वक वेद और सृष्टि-रचना एक ही परमपिता परमात्मा की सत्ता के कार्य हैं। इसीलिये इन दोनों में समन्वय व अभिन्नता है मि. डब्ल्यू पी. ब्राउन अपने सुपीरीयोरिटी ऑफ वैदिक रिलीजन पुस्तक में लिखते हैं -

"Vedic religion is thoroughly scientific where science and religion meet hand in hand. Here theology is based upon science and philosophy."

अर्थात् वैदिक धर्म पूर्णतया विज्ञान-सम्मत धर्म है, जहां धर्म और विज्ञान हाथ मिलाकर चलते हैं। यहां धार्मिक सिद्धांतों का आधार विज्ञान एवं दर्शन हैं। मि. जकालिएट समीक्षा कर लिखते हैं :- "Astonishing fact veda is of all revelations, the only one whose ideas are in perfect harmony with modern science"

डॉ. टोनी नेडर मस्तिष्क एवं चेतना विज्ञान में पी.जी.डी. उपाधि में अपनी Thesis के द्वारा मानवी शरीर के विषय में वेद और वैदिक साहित्य के सिद्धान्तों की खोज की है। उन्होंने सिद्धांत प्रस्तुत किया है कि सर्वव्यापी चेतना, शरीर की कोशिकाओं को सक्रिय करके विचार एवं वाणी को व्यवस्थित करती है। चूँकि वेद-ज्ञान चेतना में संचरित होता है अतः वेद सम्पूर्ण शरीर के विभिन्न अवयवों में व्याप्त होना चाहिये। उनके इस शोध से ज्ञात होता है कि वेद न केवल पूरे ब्रह्माण्ड के जीवनों का ही नियमन करता है, अपितु वे व्यक्ति की आंतरिक संरचना के चेतना तत्त्व को नियमित करते हैं। अब टोनी अन्यान्य राष्ट्रों में प्रचार कार्य कर वेदों का ज्ञान फैला रहे हैं। यह है ईश्वरीय ज्ञान की महत्ता।

चन्द्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, यम इनकी सूर्य से दूरी प्रदक्षिणा आदि का स्पष्ट खुलासा है। यम सूर्य से 365 करोड़ मील दूरी पर है और सूर्य-परिक्रमा में 240 वर्ष लगते हैं, इत्यादि वेद में सब है।

प्राचीन वैदिक काल में सौम्यक, शौण्डलिक और भौतिक धातुओं से विमान निर्माण किये जाते थे, इन धातुओं की विशेषता यह थी कि ये सूर्य ऊर्जा को अपने में निरुद्ध कर सकते थे। महर्षि भारद्वाज लिखित यन्त्र-सर्वस्व ग्रंथ में 40 अधिकारों से युक्त भिन्न-भिन्न विमानों की संरचना आठ अध्यायों में है जिसमें 100 अधिकरणों वाले 500 सूत्रों में आकाश-यान का वर्णन है। इसमें विमान की परिभाषा करते हुए लिखा है -

देशाद् देशान्तरं यद्वै द्वीपाद् द्वीपान्तरं तथा।
लोकाल्लोकान्तरं चैव यो ऽम्बरे गन्तुमर्हति॥
स विमान इति प्रोक्तः खेट-शास्त्र-विशारदैः॥

जो यान आकाश मार्ग से एक देश से दूसरे देश में, एक द्वीप से दूसरे द्वीप में और एक लोक से दूसरे लोक में जा सकता है, उसे विमान-शास्त्र के आचार्यों ने 'विमान' कहा है। वहां पर यह भी वर्णन है, कि यदि शत्रुओं के विमान आपके विमान को चारों ओर से घेर लें, तो अमुक स्विच को दबाकर अपने विमान का आकार छोटा करके उसे ऊपर या नीचे से निकालकर शत्रु विमानों के घेरे से बाहर हो जावें। वहां यह भी वर्णन है कि विमान-चालक के प्रकोष्ठ में स्थित अमुक कील = स्विच को दबाने से परदे पर उन वस्तुओं के चित्र उभर जायेंगे जो पृथ्वी के अन्दर या बाहर स्थित हों। अन्य कील (=स्विच) को दबाने से दूसरे विमान के लोगों की बातें सुनी जा सकती है।

यजुः 6/21 में अंतरिक्षं गच्छ मंत्रांश आया है। वेद बताता है कि ऐसे यानों का निर्माण करो जो मन की गति से जा आ सकें। यह संभव है। टेलीफोन से सब जगह बात होती ही है। अनुसंधान की जरूरत है।

स्वामी कृष्णतीर्थजी भारती ने वैदिक गणित में 16 सूत्र वेद आधार पर दिये हैं, जिनसे गणित की हर समस्या सुगमता से हल होती है। वेद, वेद-वाङ्मय में सब प्रकार के वैज्ञानिक तथ्यों के आविष्कारों का वर्णन है। अनुसंधान, तकनीकी से इन्हें कार्यान्वित करना है।

ऋ.10/95/6 में चपला और तेजवाली विद्युत के छह प्रकार वर्णित हैं। सूजूर्णि (उत्तम वेगवाली) श्रेणिः (उत्तम श्रेष्ठ) सुम्न आपिः (तेजादि देनेवाली) ह्रदेचक्षुः (जल में रहने वाली) ग्रंथिनि और चरण्युः अस्तु। संसार में विद्युत का प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र में विद्यमान है। वेद कहता है कि सूर्य से तथा हवा से ऊर्जा बनाओ। न कच्चे माल की कीमत का प्रश्न और न कभी उसके खत्म होने की समस्या और सब जगह उपलब्ध है। आज जो इनसे ऊर्जा बना रहे हैं, वह पद्धति महंगी है। ऐसा आविष्कार अनुसंधान करो कि एकदम सस्ती पद्धति से सस्ती ऊर्जा उपलब्ध हो जावे।

वेद मानवी संस्कृति तथा सभ्यता के मूलाधार, ज्ञान विज्ञान प्रज्ञान के उज्ज्वल धाम हैं। वेद आततायी, आतंकवादी, अत्याचारी, अनाचारियों को ध्वस्त करने वाला ब्रह्मास्त्र है।

अतः विद्या-मंदिरों की रसायन शालाओं व प्रयोगशालाओं में वेद-आधारित अनुसंधान कार्य भी शुरू किये जावें।

12. वर्ण-व्यवस्था

वर्ण :- कर्म के आधार पर मानव-समाज को चार भागों में बांटा जाता है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरू त दस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽ अजायत॥

(यजुर्वेद 31-11)

जो मनुष्य वेद-विद्या और शमदमादि गुणों से युक्त होने से मुख के तुल्य उत्तम, ब्रह्म के ज्ञाता हों वे 'ब्राह्मण'। जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्यों को सिद्ध करने वाले हों, वे 'क्षत्रिय'। जो कृषि और वाणिज्य व्यवहार-विद्या में प्रवीण हों, वे 'वैश्य'। जो सेवा में प्रवीण, विद्याहीन और साधारण-गुण-युक्त हैं, वे 'शूद्र' कहे जाते हैं।

वेदाज्ञा-अनुसार कर्म आधारित वर्ण न मानकर, संप्रदाय, मजहब की आग में कूद कर भारत विभाजित हुआ, राष्ट्र के टुकड़े हुए। हाय! वही अंधी दौड़ चालू है। वर्ण जन्म से नहीं कर्म से वेदाज्ञानुसार मान लेवें, सारी समस्यायें हल हो जायेंगी। अपनी अपनी योग्यता, रुचि के द्वारा अपने इच्छित कार्यों में लगें, सरकार की तरफ से सबको मौका खुला रहे। वेद-शिक्षा का पठन-पाठन करावें। सब अपना अपना कर्तव्य समझ कर हक हासिल करते रहें। वेदविधान अटल सत्य है, इसे जानने मानने से सब सुखी हो जावेंगे।

तपसो जातं तपसो विभूतम्। (ऋग्वेद 10/183/9)

विद्या तप से उत्पन्न होती है और तप से निखरती है।

आ वाजं वाज्यक्रमीत् (सामवेद 655)

पुरुषार्थी ने ऐश्वर्य पाया।

स्वयं यजस्व तन्वांऽस्वाहि ते (सामवेद 1589)

तुम अपने शरीर को स्वयं पुष्ट करो। वह तुम्हारा ही है।

अपने अपने गुण-कर्म-स्वभाव से वर्ण निर्धारित होते हैं। श्रम का विभाजन ही वर्ण-व्यवस्था है। कुछ शारीरिक श्रम करें, कुछ मानसिक परिश्रम करें, कुछ बौद्धिक चिन्तन करें तो कुछ केवल दिग्दर्शन का कार्य करें। ये ही चार वर्ण हैं। इनमें परस्पर समरसता रहे तो सफलता निश्चित है। जहां छोटे बड़े का संबंध है, अथर्ववेद में साफ लिखा है कि न कोई बड़ा है, न छोटा। अपने अपने स्थान पर सफलता के लिये सभी का समान महत्त्व है। शरीर के सब अवयवों अंगों का अपनी अपनी जगह महत्त्व है। आंख बिना देख नहीं सकते, कान बिना सुनना नहीं होता, मुँह बगैर बोलना और खाना नहीं हो सकता, बिना पैर चल नहीं सकते, इसी तरह शरीर के अन्दर के अंगों की बात है। ईश्वर ने कैसा समन्वय बनाया है, धन्य हो। इसी तरह वर्ण-व्यवस्था प्राणी के जीवन व समाज में जरूरी है। जात-पांत, मजहब, सम्प्रदाय इन सबसे ऊँचे उठकर वर्ण-व्यवस्था है। ईश्वरीय सत्य उपदेश को मानने से ही सब झगड़े झंझट खत्म होते हैं।

उल्लू कहता है सूर्य होता ही नहीं है, कारण वो दिन में देख नहीं सकता, रात को अंधेरा ही देखता है। अतः वर्ण-व्यवस्था को समझने और अमल में लाने से बहुतेरे झगड़े सलट जावेंगे, नहीं रहेंगे।

समाज-संचालन के लिए शिक्षक, रक्षक, पोषक और सेवक आवश्यक होते हैं। इन्हीं को वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा जाता है।

13. शिक्षा-पाठ्य-पुस्तकों में वेदाङ्गादिं आधार हो।

वेद-विद्या (शिक्षा) जिससे ईश्वर से लेकर पृथ्वी-पर्यन्त पदार्थों का सत्य ज्ञान होकर उनसे यथा योग्य उपकार लेना होता है, इसका नाम विद्या है।

जिसमें समस्त ज्ञान हो उसे सरस्वती कहते हैं। पर ब्रह्म में समस्त ज्ञान है अतः परमात्मा का नाम सरस्वती है। परब्रह्म से ही वेदों का प्रादुर्भाव होने से वेद सर्व-विद्यामय हैं अतः वेदवाणी भी सरस्वती है।

1. यह दृष्ट रूप होने से 'पश्यन्ती' वाक् है। इसी के माध्यम से पर ब्रह्म का दर्शन और समस्त ज्ञान का दर्शन बोध होता है, अतः शब्द ब्रह्म रूपी वेद वाणी 'पश्यन्ती वाक्' 'अपरा' सरस्वती है।

2. जब यही वेदवाणी मन का विषय बन जाती है तब 'मध्यमा' सरस्वती की स्थिति को प्राप्त हो जाती है, यही सरस्वती का सावित्री स्वरूप है। जिस प्रकार सविता के उदय होने से सर्वत्र प्रकाश और प्राण जाग्रत हो जाता है। उसी प्रकार मन जब वेद-मन्त्र का मनन करता है तो दिव्य ज्ञान एवं दिव्य प्राणों का उदय हो जाता है।

3. जब मन, बुद्धि, चित्त, वेदवाणी के ज्ञान एवं प्राण से पूर्ण हो जाते हैं तब वेद 'वैखरी' वाणी में प्रकट होता है जो 'वैखरी एवं अपरा' स्वरूप है। यही वेदरूपी सरस्वती की गायत्री रूप में स्थिति है।

4. इस प्रकार वेद-मन्त्रों के माध्यम से गायत्री, सावित्री और सरस्वती स्थितियों को प्राप्त कर ब्रह्मरूपी परा सरस्वती की प्राप्ति करनी चाहिए।

अतः शिक्षा के क्षेत्र में वेद-पठन-पाठन आधार बनाना नितांत आवश्यक है। निम्न वेद मंत्रों का यही आदेश है व वेद आधार होने से ही सरस्वती पल्लवित होगी।

ओ३म् पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ (ऋग्वेद 1/3/10)

पवित्र करने वाली, विविध ज्ञान से बलवती, बुद्धि कर्मो द्वारा धन प्राप्त कराने वाली, अत्यंन्त रसवती वेदवाणी रूपा सरस्वती हमारे जीवन यज्ञ को कान्तिमान् बनावें।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती॥ (ऋग्वेद 1/3/11)

सत्यवाणी तथा विद्याओं का उपदेश करने वाली, सुबुद्धियों को चेताने वाली, अत्यन्त रसवती वेदवाणी रूपा सरस्वती समस्त श्रेष्ठतम शुभकर्मों को धारण करती है अर्थात् उनका उपदेश करती है।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति॥ (ऋग्वेद 1/3/12)

वेदवाणी सरस्वती, प्रज्ञान से महान् ज्ञान सागर को प्रेरित करती है। वह सकल शिक्षा ज्ञान तथा कर्म-कलाप को प्रकाशित करती है।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥ (ऋग्वेद 2/41/16)

हे अम्बितमे ! = व्यक्तवाणी को देने वाली = सिखाने वाली नदीतमे = अव्यक्त ध्वनि सिखाने वाली देवितमे = विविध ज्ञान तथा वस्तुओं का दान देने वाली, सरस्वति ! अथाह ज्ञान से युक्त परमेश्वरी माँ। हम बिना वाणी और बिना ज्ञान के अप्रशस्त = निन्दनीय से हैं। हे अम्ब = व्यक्ताऽ व्यक्त वाणी की दात्री परमेश्वरी माँ ! हमारे में प्रशंसनीयता = उत्तमता भर दो।

'अबि' धातु शब्दार्थक है। या अम्बयति शब्दयति = शब्दयुक्तान् करोतीति अम्बी अम्बा वा। वर्तमान में शब्द = वाणी सिखाने वाली जननी होती है, इसलिये वह अम्बा अथवा अम्बी कहलाती है। अम्बा का ही अपभ्रंश अम्मा है। अम्बी का ही अपभ्रंश अम्मी और मम्मी है।

सृष्टि के प्रारम्भ में जब कोई बोलना नहीं जानता था, जिससे सुन सुन कर कोई मनुष्य बोलना सीखता, उस अवस्था में परमेश्वरी जननी ने अन्तर्यामी स्वरूप से मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों को उनके अन्दर से प्रबल प्रेरणा के द्वारा बोलना सिखाया, बोलने को बाधित किया। मनुष्येतर प्राणियों में जो अव्यक्त वाणी है, उसकी दात्री भी परमेश्वरी माता है, कोयल की कुहू-कुहू, कौवे की कांव-कांव, बिल्ली की म्याऊँ-म्याऊँ आदि अव्यक्त ध्वनि को सिखाने वाली भी ईश्वरी माँ है।

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।

धीनामवित्र्यवतु॥ (ऋग्वेद 6/61/4)

जप,यज्ञ, तप, स्वाध्याय, योगानुष्ठान आदि साधनों से तेजस्विता को प्राप्त दिव्यगुणयुक्ता वेदमाता सरस्वती, हमारी बुद्धियों की रक्षिका होकर अच्छे प्रकार से हमारी रक्षा करें।

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते।

इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ (ऋग्वेद 6/61/5)

हे दिव्य-गुण-युक्त वेदवाणी सरस्वती तू सुख धनादि के लिए ऐश्वर्यों के लिए हमें उपदेश करती है। उससे समस्त क्लेशों का उच्छेद उसी प्रकार हो जाता है जैसे सूर्य मेघों को छिन्न-भिन्न एवं विलीन कर देता है।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।

सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥

(ऋग्वेद 10/17/7)

दिव्य गुण चाहने वाले सरस्वती (विज्ञानवती वेद विद्या) को धारण करते हैं। यज्ञ के आयोजन के लिए वेदवाणी सरस्वती का आश्रय लेते हैं। श्रेष्ठकर्म करने वाले वेदवाणी सरस्वती के द्वारा कर्मानुष्ठान करते हैं। वेदवाणी सरस्वती के साधक जनश्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त करते हैं।

वैदिक साहित्य में विद्या अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए ब्रह्मचारी, और अन्तेवासी शब्दों का प्रयोग हुआ है। ब्रह्मचारी शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्म का अर्थ है - परमात्मा, वेद, ज्ञान, वीर्य। चर शब्द का अर्थ है - विचरण, अध्ययन, उपार्जन और रक्षण। इस प्रकार परमात्मा में विचरण करने वाला ब्रह्मचारी है। विद्यार्थी का अर्थ है - आचार्य के चरणों में रहकर विद्या उपार्जन करने वाला।

वैदिक शिक्षा में उन्नति के निम्न साधन है -

शारीरिक उन्नति	मानसिक उन्नति	आत्मिक उन्नति
ब्रह्मचर्य	शिक्षा	त्रैतवाद का ज्ञान
प्राणायाम एवं नियमित व्यायाम	सत्संग	कर्मफल पर दृढ़ विश्वास
शुद्ध एवं पौष्टिक आहार विहार	स्वाध्याय	यमनियमों का पालन

निम्न दोषों से विद्यार्थी को बचना जरूरी है। विदुरजी ने लिखा है -

आलस्यं मदमोहौ च चापल्यं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथा ऽत्यागित्वमेव च ॥

आलस्य= शरीर और बुद्धि में जड़ता, नशा, मोह, चपलता, इधर-उधर की व्यर्थ की कथा कहना और सुनना, गप्पें करना, पढ़ते-पढ़ते रुक जाना, अभिमान और अत्याग इनसे बचना है।

वेदशिक्षा ईश्वर, माता पिता, गुरु विद्यालय समाज, राष्ट्र व मित्रों के प्रति अनुराग और श्रद्धा बढ़ाना सिखाती है।

वेद में पुरुषार्थ की महत्ता प्रकट करते हुए लिखा है कि जो जागता है पुरुषार्थ करता है, ऋचायें उसी को चाहती है, जो जागता है साम के मंत्र उसकी ओर चलते हैं, ईश्वर उसी का मित्र सहायक बनता है।

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥

(ऋग्वेद 5/44/14)

अतः वेदशिक्षा पठन-पाठन अनुसंधान का चरैवेति चरैवेति =प्रयत्न करो प्रयत्न करो।

14. अथ ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासनाः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥ (यजु.अ. 30 मं. 3)

हे सकल जगत् के उत्पतिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिए। जो कल्याणकारक गुण कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमको प्राप्त कीजिए।

तू सर्वेश, सकल सुखदाता, शुद्ध स्वरूप विधाता है।
उसके कष्ट नष्ट हो जाते जो तेरे ढिंग आता है॥
सारे दुर्गुण दुर्व्यसनों से हमको नाथ बचा लीजे।
मंगलमय गुण-कर्म-पदारथ प्रेम-सिन्धु हमको दीजे॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु. अ. 13 मं. 4)

जो स्वप्रकाश-स्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतनस्वरूप था जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था वह इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिये ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से भक्ति विशेष किया करें॥2॥

तू ही स्वयं प्रकाश, सुचेतन, सुखस्वरूप शुभ त्राता है।
सूर्य चन्द्र लोकादिक को तू रचता और टिकाता है॥
पहिले था अब भी तू ही घट-घट में, व्यापक स्वामी।
योग, भक्ति तप द्वारा तुझको पावें हम अन्तर्यामी॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु.अ. 25/मंत्र 13)

जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर आत्मा और समाज के बल का देने हारा, जिसकी सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसका प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं। जिसका आश्रय ही मोक्ष-सुखदायक है। जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहें॥3॥

तू ही आत्मज्ञान बलदाता सुयश विज्ञ जन गाते हैं।
तेरी चरण-शरण में आकर, भवसागर तर जाते हैं॥
तुझको ही जपना जीवन है, मरण तुझे बिसराने में।
मेरी सारी शक्ति लगे प्रभु, तुझमें लगन लगाने में ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु.अ. 32/मंत्र 3)

जो प्राण वाले और अप्राणिरूप जगत् का अपने अनन्त महिमा से एक ही राजा विराजमान है, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकलेश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात् अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा-पालन में समर्पित करके विशेष भक्ति करें॥4॥

तूने अपनी अनुपम माया से जग-ज्योति जगाई है।
मनुज और पशुओं को रचकर निज महिमा प्रगटाई है॥
अपने हिय-सिंहासन पर श्रद्धा से तुझे बिठाते हैं।
भक्ति भाव की भेंटें लेकर तव चरणों में आते हैं॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥5॥

(यजु. 32-6)

जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि को धारण किया और जिस ईश्वर ने सुख को धारण किया और जिस जगदीश्वर ने दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है, जो आकाश में सब लोक-लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक कामना करने योग्य पर ब्रह्म की प्राप्ति के लिये सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें॥5॥

तारे, रवि चन्द्रादिक रचकर निज प्रकाश चमकाया है।
धरती को धारण कर तूने कौशल अलख लखाया है॥
तू ही विश्वविधाता, पोषक, तेरा ही हम ध्यान धरें।
शुद्ध भाव से भगवन्! तेरे भजनामृत का पान करें॥5॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

(ऋग्. 10/121/10)

हे प्रजा के स्वामी परमात्मा! आपसे भिन्न दूसरा कोई इन सब उत्पन्न हुए भूगोलादि जगत् को बनाने वाला और व्यापक नहीं है, उस आपके भक्ति करने वाले हम चेतनादि को नहीं तिरस्कार करते है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हो के हम लोग भक्ति करें, आपका आश्रय लेवें और वाञ्छा करें वह कामना हमारी सिद्ध होवें, जिससे हम लोग धनैश्वर्यों के स्वामी होवें।

तुझसे भिन्न न कोई जग में, सब में तु ही समाया है।
जड़ चेतन सब तेरी रचना, तुझमें आश्रय पाया है॥
हे सर्वोपरि विभो! विश्व का, तूने साज सजाया है।
हेतु-रहित अनुराग दीजिये यही भक्त को भाया है॥6॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥7॥

(यजु. 32-10)

हे मनुष्यो! वह परमात्मा अपने लोगों को भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, वह सब कामों को पूर्ण करने हारा, सम्पूर्ण लोक मात्र और नाम, स्थान जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुख-दुःख से रहित नित्यानन्द-युक्त मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त हो कर विद्वान् लोग स्वेच्छा-पूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य और न्यायाधीश है। अपने लोग मिलकर सदा उसकी भक्ति किया करें॥7॥

तू गुरु है, प्रजेश भी तू है, पाप-पुण्य फल दाता है।
तू ही सखा बंधु मम तू ही, तुझसे ही सब नाता है॥
भक्तों को इस भव-बन्धन से , तू ही मुक्त कराता है।
तू है अज, अद्वैत, महाप्रभु सर्वकाल का ज्ञाता है॥7॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम॥8॥

(यजु. 40-16)

हे स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत्, के प्रकाश करने हारे सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान व राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हमसे कुटिलतायुक्त पाप रूप कर्म को दूर कीजिये, इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुति रूप नम्रंतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें॥8॥

तू है स्वयं प्रकाशरूप प्रभो, सबका सिरजानहार तुही।
रसना निशि-दिन रटे तुम्हीं को, मन में बसना सदा तुही॥
अघ-अनर्थ से हमें बचाते रहना, हर दम दया-निधान।
अपने भक्त-जनों को भगवन् दीजे यही विशद वरदान॥8॥

15. संगठन -सूक्त

ओ३म् सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥1॥

हे प्रभो! तुम शक्तिशाली, हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए सुख-वृष्टि को॥1॥

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥2॥

प्रेम से मिलकर चलो, बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो॥2॥

समानो मन्त्रः समितिःसमानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः, समानेन वो हविषा जुहोमि॥3॥

हों विचार समान सबके, चित्तमन सब एक हों।
ज्ञान पाते हैं बराबर, भोग्य पा सब नेक हों॥3॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥4॥

हो सभी के मन तथा संकल्प अ-विरोधी सदा।
मन भरे हो प्रेम से जिससे बढ़े सुख-सम्पदा॥4॥

16. वेद-महिमा

ज्ञान के सागर चार वेद, ये वाणी है भगवान् की।
इसी से मिलती सब सामग्री, जीवन के कल्याण की॥

सब सच्ची विद्यायें जग में प्रकट वेद से होती हैं।
यहीं से जाकर ही सब नदियाँ पृथ्वी का आंगन धोती हैं॥
उसी को जीवन-सार मिला जिसने इसकी पहचान की।
इसी से मिलती .... ॥1॥

सृष्टि एक अदालत है और न्यायाधीश विधाता है।
यहीं पर हर प्राणी अपने कर्मों का फल पाता है॥
वेद के अन्दर सब रचना है विधि के अमर विधान की।
इसी से मिलती ....॥2॥

वेद को पढ़ना और पढ़ाना परम धर्म कहलाता है।
सुनना और सुनाना भी कर्त्तव्य बताया जाता है॥
वेद ही असली दौलत है दुनियां के हर इन्सान की।
इसी से मिलती ....॥1॥

धन्य धन्य भारत भूमि जिस पर वेदों का ज्ञान हुआ।
वेद का अमृत पिया पिलाया तब यह देश महान् हुआ॥
'पथिक' पुण्य भूमि है, यह ऋषियों के सन्तान की।
इसी से मिलती ....॥1॥

ईश्वर का सच्चा स्वरूप

गायत्री महामंत्र

ओ३म् भूर्भुव स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।